जैन भारती

सितंबर, 2007 • वर्ष 55 • अंक 9 • वार्षिक रु. 200.00

With best compliments from :

GIRIAS

The Consumer Durable People

The Undisputed No. 1 in Karnataka for Television and Home Appliances

BANGALORE — 6 world class Showrooms

Gandhinagar * Brigade Road * Sadashivnagar * Jayanagar * Domlur Ring Road * Rajajinagar

Gandhinagar	Brigade Road	Sadashivnagar	Jayanagar	Domlur Ring Road	Rajajinagar
Ph : 22264551 22204189 Fax : 22353708	Ph : 22228032 22270126 Fax : 22227879	Ph : 23619195 23619196 Fax : 23611448	Ph : 26566140 26566141 Fax : 26566143	Opening By March 2007	Ph : 23119236 23119237 Fax : 23119239

KARNATAKA — World Class Showrooms

Mysore	Hubli	Mangalore
Ph : 2424330 2424331 Fax : 2424332	Ph : 2358601 2358602	Ph : 2445551 2442220

TAMILNADU — World Class Showrooms

Selam	Coimbatore
Ph : 2330735 2330734 Fax : 0427-2330764	Ph : 2231675 Fax : 0422-2233059

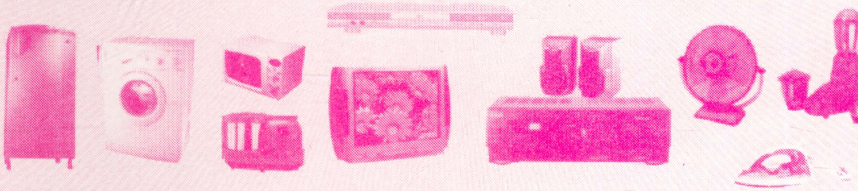

KARNATAKA FILATEX

(Mfrs. of H.D.P.E Woven Fabric)

Magadi Chord Road, BANGALORE 560079

Ph. : 23353714, 22384416

TIGER 388292

UTTARANCHAL TEA CO. PVT. LTD.

Pingalkot, Post. Kausani

Distt. Bagneshwar, Uttaranchal

Ph. : 05962-258330 Fax : 05962-258331

GIRIAS UTTARANCHAL TEA

SONY BPL SAMSUNG LG IFB Haier Electrolux Kelvinator TCL Whirlpool ONIDA PHILIPS

Godrej NOKIA Connecting People Sony Ericsson USHA LEXUS FORBES GLEN BRAUN MAHARAJA Kailash ULTRA GRIND MOTOROLA

शुभू पटवा
मानद संपादक
•
बच्छराज दूगड़
मानद सह-संपादक

जैन भारती

वर्ष 55 • सितंबर, 2007 • अंक 9

विमर्श

11
आचार्यश्री महाप्रज्ञ
कर्म-सिद्धांत और ध्यान-साधना

12
चेतना का ऊर्ध्वारोहण

13
शिक्षा का प्रश्न

19
काका कालेलकर
आत्मतत्त्व और उसका फल

•

आवरण
खेराज

अनुभूति

23
युवाचार्यश्री महाश्रमण
साधना की दीवट पर मर्यादा का दीप

26
साध्वी विश्रुतविभा
चुनौतियों में अप्रकंप व्यक्तित्व

29
मुनि राकेशकुमार
पर्युषण : वेरं मज्झं न केण इ

32
कहानी
ममता अग्रवाल
किशोर मन

34
कविता
अशोक अनुराग की कविताएं

प्रसंग

7
शुभू पटवा
विस्मृति की साधना

शीलन

37
साध्वी पुण्ययशा
मंत्रद्रष्टा जयाचार्य और नमस्कार महामंत्र

48
साध्वी सुमतिप्रभा
संस्कारों की अग्नि से निसृत कुंदन

51
मुनि राजकुमार
क्षमा : आध्यात्मिक शक्ति

54
बालकथा
चित्रा मुदगल
गड़रिया बना महामंत्री

संपादकीय पता : संपादक, जैन भारती, भीनासर 334403, बीकानेर • फोन : 0151-2270305, 2202505
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- रुपये • त्रैवार्षिक 500/- रुपये • दसवर्षीय 1500/- रुपये

पंचों को पूछूंगा

एक वैद्य ने किसी आदमी की आंखों की शल्य-चिकित्सा की। आंख के ठीक होने पर वैद्य ने पुरस्कार मांगा।

तब वह बोला—'पंचों को पूछूंगा। यदि पंच कहेंगे, 'तुझे दीखने लग गया, तब मैं तुम्हें पुरस्कार दूंगा।'

तब वैद्य बोला—'तुम्हें कैसा दिखाई देता है?'

तब वह फिर बोला—'पंच कहेंगे कि 'तुझे ठीक दिखाई दे रहा है', तब तुम्हें पुरस्कार दूंगा।'

वैद्य ने सोचा—पुरस्कार मिल चुका!

इसी प्रकार किसी को सिद्धांत समझाकर कहा जाता है, 'अब तुम गुरु स्वीकार करो', तब वह कहता है, 'दो-चार व्यक्तियों को पूछूंगा और पहले जो गुरु हैं, उन्हें भी पूछूंगा। वे कहेंगे तो गुरु-धारणा कर लूंगा।' तब जान लेना चाहिए कि इसने सिद्धांत को ठीक से नहीं समझा।

कहीं नया झगड़ा खड़ा न हो

स्वामीजी ने सिरियारी में चातुर्मास किया। वहां पोतियाबंध मत का कपूरजी नाम का साधु था और उस मत की कुछ श्राविकाएं भी थीं। संवत्सरी-पर्व आया, तब कपूरजी ने स्वामीजी से कहा—'भीखणजी! श्राविकाओं से खटपट हो गई, अतः उनसे क्षमायाचना करने जा रहा हूं।'

स्वामीजी बोले—'तुम क्षमायाचना करने जा रहे हो, पर कहीं नया झगड़ा खड़ा न कर दो!'

तब कपूरजी ने कहा—'नया झगड़ा क्यों करूंगा?'

उसके बाद में वह श्राविकाओं के पास जाकर बोला—'अपन परस्पर क्षमायाचना करते हैं। तुमने तो बहुत अयोग्य व्यवहार किया, पर मुझे तो राग-द्वेष नहीं रखना।'

तब श्राविकाओं ने कहा—'अयोग्य व्यवहार तुमने किया है या हमने?' इस प्रकार परस्पर झगड़ा बढ़ गया।

वापस आकर स्वामीजी से बोला—'भीखणजी! झगड़ा तो उलटा बढ़ गया।'

तब स्वामीजी बोले—'हमने तुम्हें पहले ही कहा था।'

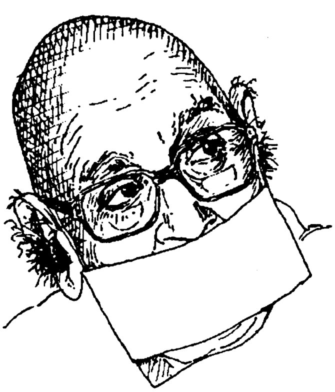

मनुष्य अच्छा या बुरा—जो कुछ करता है, वह उसके अंतर्भावों का परिणाम है। जैसे भाव, वैसी अभिव्यक्ति—यह तथ्य है। इसके आधार पर प्रश्न खड़ा हो सकता है कि मनुष्य स्वयं ही अपने भाग्य का विधाता है, तो वह अवांछनीय प्रवृत्ति क्यों करता है? उसकी हर प्रवृत्ति का परिणाम उसी को भोगना पड़ता है, तो वह गलत प्रवृत्ति के प्रेरक भावों को क्यों नहीं छोड़ता? गलत संस्कारों को नहीं बदला जाता है, तो जीवन का सुख छिन जाता है—यह जानकर भी वह बदलाव की यात्रा क्यों नहीं करता? बदलने में क्या लाभ और न बदलने में क्या नुकसान है? लाभ-नुकसान के गणित को समझकर भी व्यक्ति क्यों नहीं बदलता है?

बदलाव की प्रक्रिया जटिल हो सकती है, पर वह असंभव नहीं है। जो व्यक्ति बदलना चाहता है, उसके लिए एक पंचसूत्री कार्यक्रम निर्धारित है। इसके पांच अंग ये हैं—आस्था, आशा, आत्मविश्वास, इच्छाशक्ति और अनुप्रेक्षा अभ्यास। इसकी क्रियान्विति के लिए एक 'वर्कशॉप' आवश्यक है। यह 'वर्कशॉप' किसी सभागार में नहीं होगा। इसके लिए भावों की दुनिया में प्रवेश करना होगा।

—आचार्यश्री तुलसी

जैन दर्शन में नौ तत्त्व माने गए हैं। उनमें पांचवां तत्त्व है—आश्रव। आश्रव के पांच बिंदुओं में पहला बिंदु है—मिथ्यात्व, असम्यक् दृष्टि। दुर्भाग्य के निर्माण में इसका प्रमुख हाथ है। दृष्टिकोण गलत होने का अभिप्राय है—मूल में ही भूल होना। मूल नींव ही खोखली हो तो बहुमंजिली इमारत के स्थाइत्व की कल्पना कैसे की जा सकती है? अध्यात्म साधना की दृष्टि से यह यक्ष-प्रश्न है कि व्यक्ति का दृष्टिकोण किसकी परिक्रमा कर रहा है—पदार्थ की या आत्मा की? पदार्थपरक दृष्टिकोण वाला व्यक्ति धन-वैभव, स्वजन-परिजन को ही त्राण मानने की भूल कर सकता है। आत्मपरक दृष्टिकोण वाला व्यक्ति आत्मा को ही केंद्र में रखता है और पदार्थ परिधि में रहते हैं।

सामान्यतया व्यक्ति का पदार्थ के प्रति गहरा आकर्षण होता है, क्योंकि उसमें बाह्य चाकचिक्य होता है, लुभावनापन होता है। इसलिए बहिर्मुखी चेतना बरबस उसकी ओर खिंचती चली जाती है। आत्मत्व उससे दूर होता चला जाता है। पर ज्यों ही दृष्टि का आकाशपथ स्वच्छ होता है, निर्मल होता है, तो उसे यथार्थ का बोध हो जाता है। वह पदार्थ जगत से मुंह मोड़ लेता है और उसके कदम आत्मरमण की दिशा में प्रस्थित हो जाते हैं।

—युवाचार्यश्री महाश्रमण

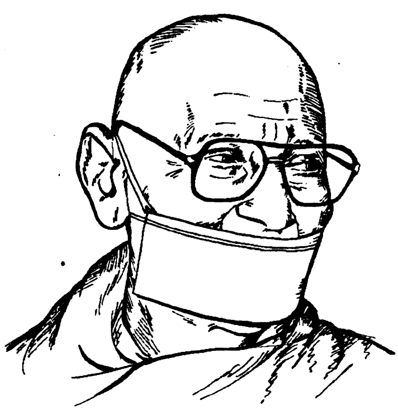

ध्यान क्या है? राग-द्वेष से दूर होना, वीतराग होना और वीतरागता की साधना करना ही ध्यान है। जिस क्षण में ध्यान होता है, वह वीतरागता का क्षण होता है। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जब-जब राग-द्वेषमुक्त क्षण आता है, तब-तब ध्यान घटित होता है। उस क्षण में ज्ञाता और ध्याता, ज्ञेय और ध्येय एक बन जाते हैं। जहां राग-द्वेष का क्षण आता है, वहां न ज्ञाता रहता है और न ध्याता। न ज्ञेय रहता है और न ध्येय। उस समय व्यक्ति और वस्तु भोग्य बन जाते हैं।

ऐसी विवेक-चेतना जागे कि हम ज्ञाता और ध्याता को, ज्ञेय और ध्येय को सम्यक् रूप में समझ लें और भोक्ता-भोग्य के प्रपंच से दूर रह सकें। सत्य की खोज ऐसे ही क्षणों में संभव है। महावीर ने कहा—स्वयं सत्य की खोज करो। इसका तात्पर्य है—मन से परे, निर्विकल्प अथवा निर्विचार अवस्था में पहुंचकर सत्य की खोज करो। इसके लिए आवश्यक है—अभ्यास। एक दिन में न भोक्ता-भाव मिटेगा और न ज्ञाता-भाव विकसित होगा, न विचारों की चंचलता मिटेगी। यदि हम निरंतर ध्यान का अभ्यास करते रहें और इस मार्ग पर श्रद्धापूर्वक चलते रहें तो एक दिन लक्ष्य तक पहुंच जाएंगे।

वह लक्ष्य है—मोक्ष। मोक्ष है—शुद्ध आत्मा, शरीर-मुक्त आत्मा। वहां केवल आत्मा है, पर्याय है, पर स्वाभाविक पर्याय है। वैभाविक पर्याय समाप्त हो गए। प्रत्येक व्यक्ति यह सोचे कि मैं भोक्ता-भाव में नहीं, ज्ञाता-भाव में अधिक रह सकूं। भोक्ता-भाव जितना कम होगा, दुख उतना ही कम होगा। व्यावहारिक और स्वाभाविक—दोनों दृष्टियों से यह सुंदर प्रयोग है कि हम अधिक समय तक ज्ञाता बने रहें। जो सत्य है, वही स्थिर है। जिसको हमने सत्य माना है, वह स्थिर नहीं होगा। एक समय का सत्य दूसरे समय में असत्य और एक समय का असत्य दूसरे समय में सत्य बन जाता है। सत्य असत्य बनता है और असत्य सत्य। सब सापेक्ष हैं।

यह दृष्टि साफ रहनी चाहिए कि सत्य के साथ अनेक अपेक्षाएं जुड़ी हुई हैं। हम एकांत दृष्टि से न देखें। सत्य तक पहुंचने में शब्द व्यवधान भी है और साधन भी। शब्द यदि ज्ञान के साथ जुड़ा है तो वह सत्य की ओर ले जाएगा। यदि वह राग-द्वेष से जुड़ा है तो सत्य में व्यवधान पैदा करेगा। शब्द उलझाता भी है और सुलझाता भी है। यदि हम शब्द से परे, विचार से परे पहुंच जाएं, निर्विकल्प या निर्विचार स्थिति को प्राप्त कर लें तो उलझन समाप्त हो जाएगी। प्रेक्षाध्यान का एक प्रयोग है—विचार-प्रेक्षा। हम विचार को देखना शुरू करें, विचार बंद हो जाएगा और निर्विचार अवस्था घटित होने लगेगी। उस स्थिति में ज्ञाता-द्रष्टा-भाव विकसित होगा, अध्यात्म और सत्य का स्पर्श होगा, पर्याय के जगत से द्रव्य के जगत की ओर प्रस्थान होगा। यही प्रस्थान आध्यात्मिक व्यक्ति को परम सत्य का साक्षात्कार करा सकता है।

—आचार्यश्री महाप्रज्ञ

प्रसंग

विस्मृति की साधना

चिरकाल से यह सुनते आ रहे हैं कि—'नेकी कर कुअें में डाल' और यह भी कि—'बीती ताहि बिसारि दे'—पर, इन वाक्यों का मर्म और इनमें अंतर्निहित अर्थों की बारीकियों की ओर कुछ कम ही गौर हुआ है। क्या इसे हम विस्मृति की साधना कह सकते हैं?

व्यक्तिशः उन लोगों के तो यह हित में ही है, जिनका पुरुषार्थ परोपकार के निमित्त होता है। वे यदि 'नेकी कर कुअें में डाल'—जैसे नीति वाक्य को अपने आचरण का अंग न बनाएं, तो इतने बोझ-ग्रस्त हो जाएं कि आगे चल ही नहीं सकें। जो-कुछ किया, उसका विस्मरण होता चला जाए तो कोई अहंकारग्रस्त भी नहीं हो पाएगा। दूसरे शब्दों में यह भी मान सकते हैं कि अपने किए (सद्कृत्य ही) के प्रति आसक्तिमुक्त भी रहा जा सकेगा। पर, ऐसी साधना दुस्साध्य है।

इसी तरह 'बीती ताहि बिसारि दे' के लिए भी यह कहा जा सकता है। जो बीत गया (अनहोना) उसका अब क्या रोना! उसे भूलना ही हितकर है और यदि हम न भूलें तो जीवन जड़ बन जाए। पर, क्या हम भूल पाते हैं? यह भी दुस्साध्य ही है और इसके लिए भी वही विस्मरण की साधना जरूरी है।

भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक पांडुरंग सदाशिव साने (साने गुरुजी) कहते हैं कि—'संसार में स्मरण जितना ही विस्मरण का महत्त्व है। जन्म लेने के बाद से हमने जो-जो बातें कीं, जो-जो सुना, जो-जो देखा, जो-जो हमारे मन में आया—यदि उन सबका हमें हमेशा स्मरण रहे तो कितना बड़ा बोझ हो जाएगा। उस प्रचंड पर्वत के नीचे हम कुचल जाएंगे। यह जीवन असह्य हो जाएगा।'

साने गुरुजी का कथन वर्तमान समय का यथार्थ है। यह यथार्थ किसी अन्य संदर्भ में सर्वपल्ली राधाकृष्णन कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं—'हम ऐसे युग में जी रहे हैं, जो अपनी पराजय को और अपनी नैतिक शिथिलता को जानता है; यह एक ऐसा युग है जिसमें प्राचीन निश्चित मूल्य टूट रहे हैं और परिचित प्रणालिकाएं नष्ट-भ्रष्ट हो रही हैं। असहिष्णुता और कड़वाहट दिनोदिन बढ़ रही हैं। नव-निर्माण की वह ज्योति, जिसने महान मानव-समाज को प्रेरित किया था, आज मंद पड़ती जा रही है।'

इस महान मानव-समाज को प्रेरित करने वाली 'ज्योति' के मंद पड़ते जाने के कारणों को तलाश करने की आज महती आवश्यकता है और तब—'नेकी कर कुअें में डाल'—जैसे नीति वाक्य के एक अन्य रूप-स्वरूप पर भी हमें गौर करने की जरूरत है। नेकी के बतौर समाज में जो-कुछ होता है—क्या उसे कुअें में डालते रहना नीति-सम्मत है? दूसरे शब्दों में जो करणीय है उसका विस्मरण होते जाना क्या महान मानव-समाज को प्रेरित करने वाली 'ज्योति' को ठंडा कर देने अथवा मंद कर डालने वाला अनुचित कृत्य नहीं है? इस मंतव्य पर सुधी जनों को गौर करना जरूरी है और समाज के प्रज्ञाशील जन यह विचार करें कि ऐसा होते जाने से समाज की दशा या दिशा क्या हो जाने वाली है?

निश्चय ही यह पहलू भी सब जानते हैं कि 'नेकी' या 'बदी' कुओं में कहां डाली जा रही है? पर, सवाल यह नहीं है, सवाल यह है कि क्या 'नेकी कर कुओं में डाल' आदर्श स्थिति के रूप में महिमामंडित हो? महात्मा गांधी भी मानते रहे हैं कि—'वे कल्पना-विहार करने वाले आदर्शवादी नहीं, किंतु एक व्यावहारिक आदर्शवादी हैं।' जाहिर है कि जो श्रेष्ठतर है, उसे लोकव्यापी बनाया जाना चाहिए। नेकी, परोपकार, सद्व्यवहार, सौजन्यता, सहजीवन जैसे जीवन-कर्म कुओं में डालने के लिए न होकर, लोक में व्यापने के लिए हों—यह वही 'व्यावहारिक आदर्शवादिता' है, जिस ओर महात्मा गांधी संकेत करते हैं।

हम थोड़ी बात 'बीती ताहि बिसारि दे' पर भी करें। जो अनहोना है, उसे बिसार देने की बात तो किसी हद तक समाज में देखी जाती है, पर राग-द्वेष या ईर्ष्या-मत्सर को बिसारा जा सका है? हम व्यापक स्तर पर अपने समाज पर दृष्टिपात करें, तब डॉ. राधाकृष्णन का यह कथन सर्वथा सही दृष्टिगत होगा कि—'असहिष्णुता और कड़ुवाहट' समाज में दिनोदिन बढ़ रही हैं। हमारा यह प्रसंग इसी बिंदु पर केंद्रित है और ऐसे ही बिंदुओं के विस्मरण की आज इस समाज को सर्वाधिक आवश्यकता है। अतः जब हम विस्मृति की साधना की बात करते हैं तो संकेत एकदम स्पष्ट है कि किन बातों को विस्मृत करने की जरूरत है?

जिन बातों को लेकर हम असहिष्णु हो उठते हैं, वे सब राग-द्वेष और ईर्ष्या-मत्सर के भावों में निहित हैं और इनसे ही आपसी कड़ुवाहट व वैमनस्य व्यापते हैं। हम देखते हैं कि भाई-भाई से लेकर पड़ोस व राष्ट्रों तक के बीच टकरावों के जो-जो कारण रहे हैं, आखिरशः उन कारणों से ही आपसी कड़ुवाहट व वैमनस्य को हवा मिली है। ऐसे कारणों के ब्योरे और उनकी गहराई में फिलवक्त जाने की जरूरत नहीं, उन सबको हम सभी भलीभांति जानते हैं। फिलहाल जरूरत यह है कि क्या ऐसे उपाय हो सकते हैं कि वे सब कारण विस्मृत हो जाएं? यहीं विस्मृति की साधना की आवश्यकता है।

इस साधना का पहला चरण क्षमा और मैत्री माना जा सकता है। जैन सिद्धांत और इस मत को मानने वाले क्षमा और मैत्री के प्रबल पक्षधर हैं। यह नहीं कि अन्य मतावलंबी इस मानवोचित गुण के पक्षधर नहीं हों, मैत्री और क्षमा की पक्षधरता की बात हर मन में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है। पर, जैन मत को इसका प्रबल पक्षधर कहते हैं तो इसलिए कि यही एक मत है जो सदियों से आनुष्ठानिक रूप में क्षमा और मैत्री के लिए एक अभिक्रम करता है। आठ दिन का पर्युषण-पर्व, संवत्सरी और इसकी पूर्णता पर अगले रोज क्षमायाचना—मैत्री दिवस इस अनुष्ठान का अंग होता है। यह पर्व प्रकारांतर से विस्मृति का ही संदेश देता है। पर, तब भी 'विस्मृति की साधना' का प्रयोजन इससे सिद्ध नहीं होता। बेशक, इसे इस साधना के लिए आधार-भित्ति माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि विस्मृति की साधना के लिए समाज में बीज-तत्त्व विद्यमान है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी जैसे चिंतक-मनीषी ऐसी साधना के लिए निरंतर जोर देते रहे हैं। वे तो मानते ही रहे हैं कि जिनमें विस्मरण की क्षमता का उदय हो जाता है उनका जीवन सहज, सुरम्य बन जाता है।

आज इस साधना की महती आवश्यकता है। हम विकासमान समाज तभी कहला सकते हैं जब हम में आपसी कड़ुवाहट और असहिष्णुता क्षीणतर हो। केवल संसाधनों की बहुलता-भर से आधुनिक या विकासशील हो जाना अपने में अधूरी और अधकचरी अवस्था ही है। मानवोचित गुणों का समुचित विकास ही अधकचरी अवस्था से ऊपर उठा सकता है और यह तभी हो सकता है जब क्षमा और मैत्री के शाश्वत गुणों का प्रवेश हो। विस्मृति की साधना से इन गुणों के प्रवेश का मार्ग सुलभ हो सकता है। समय का तकाजा है कि हम इस ओर अग्रसर हों।

—शुभू पटवा

(**यह अंक :** जैन भारती का यह अंक कई विशिष्टताओं से अनुगुंफित है। क्षमा और मैत्री-पर्व पर्युषण, युवाचार्यश्री महाश्रमणजी का युवाचार्य मनोनयन दिवस और साथ ही भिक्षु चरमोत्सव तथा श्रीमज्जयाचार्य निर्वाण-पर्व एक साथ इस माह में आकर इस मास की महत्ता को प्रतिष्ठापित कर रहे हैं। जैन भारती के पाठकों के लिए इन सभी अवसरों पर इस अंक में विचार-प्रधान सामग्री प्रस्तुत की गई है। साथ ही पांच सितंबर (डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का जन्म दिन), शिक्षक दिवस और श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर भी कुछ विचारोत्तेजक सामग्री आपके लिए।
— सं.)

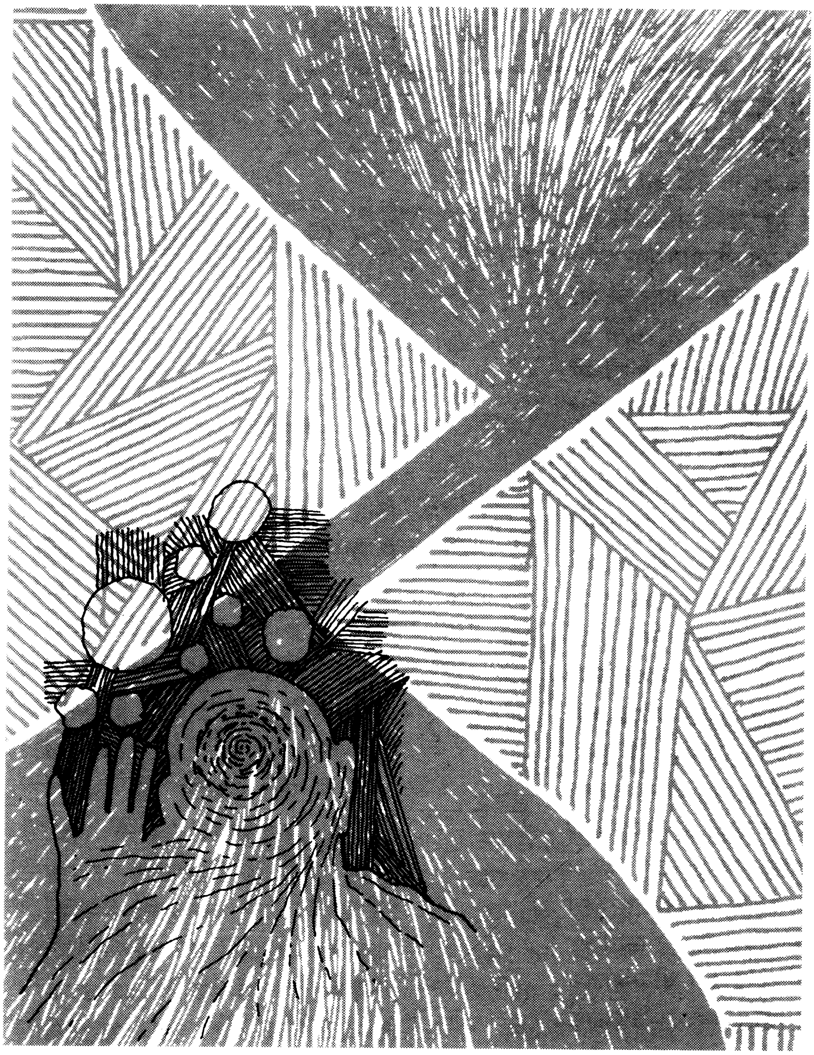

विमर्श

कर्म-क्षय का अर्थ है—सब कर्मों के बंधनों से पूर्ण अर्थात् निःशेष मुक्ति होना। कोई पुरुष ज्ञानी भी हो जाए, तथापि जब तक शरीर है—तब तक सोना, बैठना, भूख-प्यास इत्यादि कर्म छूट नहीं सकते, और प्रारब्ध कर्म का भी बिना भोगे क्षय नहीं होता, इसलिए वह आग्रह से देह का त्याग नहीं कर सकता। इसमें संदेह नहीं कि ज्ञान होने के पूर्व किए गए सब कर्मों का नाश ज्ञान होने पर हो जाता है; परंतु जबकि ज्ञानी पुरुष को यावज्जीवन ज्ञानोत्तर-काल में भी कुछ-न-कुछ कर्म करना ही पड़ता है, तब ऐसे कर्मों से उसका छुटकारा कैसे होगा? और, यदि छुटकारा न हो तो यह शंका उत्पन्न होती है कि पूर्व कर्म-क्षय या आगे मोक्ष भी न होगा। इस पर वेदांतशास्त्र का उत्तर यह है, कि ज्ञानी मनुष्य की नाम-रूपात्मक देह को नाम-रूपात्मक कर्मों से यद्यपि कभी छुटकारा नहीं मिल सकता, तथापि इन कर्मों के फलों को अपने ऊपर लाद लेने या न लेने में आत्मा पूर्ण रीति से स्वतंत्र है; इसलिए यदि इंद्रियों पर विजय प्राप्त करके, कर्म के विषय में प्राणीमात्र की जो आसक्ति होती है, केवल उसका ही क्षय किया जाए, तो ज्ञानी मनुष्य कर्म करके भी उसके फल का भागी नहीं होता। कर्म स्वभावतः अंध, अचेतन या मृत होता है, वह न तो किसी को स्वयं पकड़ता है और न किसी को छोड़ता ही है; वह स्वयं अच्छा है, न बुरा। मनुष्य अपने जीव को इन कर्मों में फंसा कर इन्हें अपनी आसक्ति से अच्छा या बुरा और शुभ या अशुभ बना लेता है। इसलिए कहा जा सकता है कि इस ममत्वयुक्त आसक्ति के छूटने पर कर्म के बंधन आप ही टूट जाते हैं, फिर चाहे वे कर्म बने रहें या चले जाएं। गीता में भी स्थान-स्थान पर यही उपदेश दिया गया है कि—सच्चा नैष्कर्म्य इसी में है, कर्म का त्याग करने में नहीं (गीता 3.4); तेरा अधिकार केवल कर्म करने का है, फल का मिलना न मिलना तेरे अधिकार की बात नहीं है (गीता 2.47); 'कर्मेंद्रियैः कर्म योगमसक्तः' (गीता 3.7)—फल की आशा न रख कर्मेंद्रियों को कर्म करने दे; 'त्यक्त्वा कर्मफलासंगम' (गीता 4.20)—कर्मफल का त्याग कर, 'सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते' (गीता 5.7)—जिन पुरुषों की समस्त प्राणियों में समबुद्धि हो जाती है उनके किए हुए कर्म उनके बंधन का कारण नहीं हो सकते।

—लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

भगवान श्रीकृष्ण (जन्माष्टमी, 4 सितंबर) का पावन स्मरण करते हुए

कर्म-सिद्धांत और ध्यान-साधना

आचार्यश्री महाप्रज्ञ

कर्म का सिद्धांत बहुत सूक्ष्म है। उसके नियमों को समझने में बहुत कठिनाई होती है। स्थूल बुद्धि से वे नियम समझ में नहीं आ सकते। आनुवंशिकता के सिद्धांत ने कर्म-सिद्धांत को समझने में सुविधा दी है और प्रवेश का द्वार खोला है। 'जीन' आनुवंशिक गुणों के संवाहक होते हैं। व्यक्ति-व्यक्ति में जो भेद दिखाई देता है, वह 'जीन' के द्वारा किया हुआ भेद है। प्रत्येक विशिष्ट गुण के लिए विशिष्ट प्रकार का 'जीन' होता है। आनुवंशिकता के ये नियम कर्मवाद के संवादी नियम हैं, पर कर्मवाद इनसे एक चरण और आगे है। कर्म परमाणु का संवहन करते हैं। व्यक्तिगत भेद का मूल कारण है कर्म। 'कम्मओणं विभत्ति भावं जणयई'—सारे विभेद कर्मकृत होते हैं। प्रत्येक जैविक विशेषता के लिए विशेष कर्म उत्तरदायी होता है। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो आनुवंशिकता, 'जीन' और रासायनिक परिवर्तन—ये तीनों सिद्धांत कर्म के ही सिद्धांत हैं। आनुवंशिकता के सिद्धांत की खोज के आधार पर कर्मवाद को जानने में एक कदम आगे बढ़ा जा सकता है।

कर्म कैसे करना चाहिए—यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। इससे अध्यात्मवाद, ध्यान का सही मार्ग उद्घाटित होता है। यदि ध्यान के द्वारा हमारी प्रवृत्ति में कोई परिवर्तन न आए, कर्म की धारा न बदले और कर्म कैसे करें—यह सिद्धांत फलित न हो, तो ध्यान करने का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। केवल आंखें मूंदकर बैठ जाना, कुछ क्षणों तक शांति या विश्राम का अनुभव कर लेना—इतना ही पर्याप्त नहीं है। ध्यान की निष्पत्ति है—'कर्म कैसे करें' की अनुभूति।

'जीन' हमारे स्थूल शरीर का अवयव है और कर्म हमारे सूक्ष्मतर शरीर का एक अवयव है। दोनों शरीर से जुड़े हुए हैं—एक स्थूल से और दूसरा सूक्ष्मतर शरीर से। यह सूक्ष्मतर शरीर कर्मशरीर है। जैसे विज्ञान की नई-नई खोजें निरंतर होती रहती हैं, मुझे विश्वास है कि एक दिन यह तथ्य भी अनुसंधान से सिद्ध हो जाएगा कि 'जीन' केवल माता-पिता के गुणों या संस्कारों का ही संवहन नहीं करते, अपितु ये हमारे किए हुए कर्मों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। ये 'जीन' कर्म से भी जुड़े हुए हैं। अभी तक यह तथ्य खोजा नहीं गया, पर बहुत संभव है कि यह शीघ्र खोज लिया जाएगा।

ध्यान-साधना के लिए सूक्ष्म चर्चा आवश्यक होती है। ध्यान सूक्ष्म की खोज है। ध्यान का प्रयोजन है स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना। सूक्ष्म सत्यों और नियमों की खोज हमारे ज्ञान का संवर्धन करती है और उससे आदमी का आचरण और व्यवहार बदलता है। नियमों को जानना बहुत आवश्यक है। नियमों को जानने के लिए ध्यान महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। नियमों को

चेतना का ऊर्ध्वारोहण

❑ आचार्यश्री महाप्रज्ञ ❑

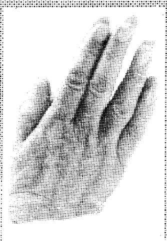

यह पर्व आध्यात्मिक विकास का पर्व है। भौतिक विकास, आर्थिक विकास, बौद्धिक विकास—विकास की बहुत-सारी शाखाएं हैं। आज का युग विकास का युग है, किंतु चेतना के विकास के लिए कोई व्यापक अभिक्रम नहीं हो रहा है। इस स्तर पर अध्यात्म का विकास अवरुद्ध है। जब अध्यात्म का विकास नहीं होता, चेतना का विकास नहीं होता, तब स्थितियां जटिल बन जाती हैं। जब चेतना का ऊर्ध्वारोहण होता है तो समाज की मानसिकता एक प्रकार की बन जाती है और जब चेतना का अधःपतन होता है तब मानसिकता दूसरे प्रकार की नजर आती है। जब समाज की चेतना नाभि के आस-पास परिक्रमा करती है तब लड़ाई-झगड़ा, कलह, स्पर्धा, छीना-झपटी, चोरी, घोटाला और गबन होते हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य का स्वयं पर नियंत्रण नहीं रह पाता। जो मन में आता है, वैसा ही कर गुजरता है।

निराला पर्व पर्युषण
9-16 सितंबर

भ्रष्टाचार आज की एक प्रमुख समस्या है। लोग कहते हैं कि आज भ्रष्टाचार बहुत ज्यादा है, दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है, लेकिन क्यों बढ़ रहा है? क्या कभी इस प्रश्न पर विचार किया? भ्रष्टाचार इसलिए बढ़ रहा है कि व्यक्ति की चेतना नीचे की ओर जा रही है। भ्रष्टाचार को मिटाना है तो चेतना के पतन को रोक कर उसका ऊर्ध्वारोहण करना होगा। चेतना के ऊर्ध्वारोहण के लिए यह पर्व आधारभित्ति के रूप में सहायक हो सकता है।

इसीलिए कहा गया है कि पर्युषण पर्व अपने ढंग का एक निराला पर्व है। भारतीय संस्कृति में इसके समान कोई दूसरा पर्व नहीं। ऐसा पर्व, जिसमें उपशम की बात सिखाई जाती है। आमोद-प्रमोद के तो बहुत-से पर्व हैं, किंतु चेतना के रूपांतरण की प्रक्रिया वाले कितने पर्व हैं? इस पर्व में मैत्री का पाठ पढ़ाया जाता है। क्षमा, अभय का पाठ पढ़ाया जाता है।

→ 14

जानने का जिन लोगों ने प्रयत्न किया है, उन्होंने सूक्ष्मता का आलंबन लिया है, फिर चाहे वे नियम विज्ञान के हों, या अध्यात्म के हों, या अन्य किसी के। नियमों की जानकारी चैतसिक विकास के द्वारा भी की जा सकती है और सूक्ष्म यंत्रों के द्वारा भी की जा सकती है। सूक्ष्म को जानने के लिए सूक्ष्म का अवलंबन लेना जरूरी है।

स्थूल बुद्धि वाला आदमी स्थूल बात में अटका रह जाता है। बालक स्थूल बात पर अटक सकता है। 'बाल' शब्द के दो अर्थ होते हैं—छोटी अवस्था वाला और अज्ञानी। जिसका ज्ञान विकसित नहीं होता, वह भी बाल है। 'बाल' व्यक्ति सूक्ष्म की खोज में नहीं जा पाता। बच्चा मिठाई चुरा रहा था। बहन बोली—भैया! तुम मिठाई चुराते हो, अम्मा तो नहीं देख रही हैं, पर भगवान तो देख रहे हैं। भगवान से तो डरो। बच्चा बोला—क्या फर्क पड़ता है! भगवान भले ही देखें। वे अम्मा को कहने नहीं आते। फिर मुझे चिंता ही क्या है? बच्चा स्थूल को ही पकड़ सकता है, सूक्ष्म को नहीं। जिस व्यक्ति का ज्ञान परिपक्व और विकसित हो गया है, जिसकी चेतना ध्यान के द्वारा परिष्कृत हो गई है, वह सूक्ष्म सत्यों और सूक्ष्म नियमों की खोज करेगा। वह नियति को, मूल नियमों को पकड़ेगा।

कर्म एक नियति है, नियम है। कर्म के द्वारा अतीत को पढ़ा जा सकता है और भविष्य को समझा जा सकता है।

कर्म के दो विभाग हो जाते हैं। एक है—पौद्गलिक या पारमाणविक कर्म और दूसरा है—चैतसिक कर्म। पारिभाषिक शब्दावली में एक है—द्रव्य कर्म और दूसरा है—भाव कर्म। कर्म परमाणुओं का संग्रहण और संश्लेषण होता है—भावकर्म के द्वारा। प्राणी का भाव और भाव के द्वारा अर्जित परमाणु—ये दो प्रकार बन जाते हैं। भावों को देखकर जाना जा सकता है कि किस

प्रकार का कर्म होने वाला है और कर्मों को देखकर जाना जा सकता है कि किस प्रकार का भाव चल रहा है। यह अतीत को जानने और भविष्य को देखने की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसी के आधार पर अतीत को पढ़ा गया है और भविष्य को देखा गया है। आज भी यदि कोई व्यक्ति सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करे तो वह समझ सकता है कि अमुक व्यक्ति कैसा है? इसका व्यवहार किस प्रकार का है? इसने क्या सोचा था? इसका चिंतन या भाव कैसा था? इसका आचरण कैसा था? ये सब बातें ज्ञात हो सकती हैं। इसी प्रकार वर्तमान के कर्मों की अवस्थाओं को देखकर यह समझा जा सकता है कि यह व्यक्ति भविष्य में किस प्रकार चिंतन, व्यवहार और आचरण करेगा? इस प्रकार अतीत और भविष्य को पकड़ा जा सकता है। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण माध्यम है, किंतु कर्मवाद के विषय की जानकारी बहुत कम है, भ्रांतियां अधिक हैं। आज भी कर्मवाद के नाम पर ऐसे सूत्र दोहराए जा रहे हैं जो कर्मवाद की छवि को धूमिल करते हैं और भ्रांत तथा त्रुटिपूर्ण सिद्धांत की प्रस्थापना करते हैं। इससे अनेक भ्रांतियां पनपी हैं और निरंतर पनपती जा रही हैं। आज प्रत्येक घटना के साथ कर्म को जोड़ दिया जाता है, जबकि कर्म की अपनी एक सीमा है।

दो मित्र समुद्र के तट पर खड़े-खड़े ज्वार-भाटे को देख रहे थे। कुछ समय बीता। उन्हें एक जहाज दिखाई दिया। एक ने कहा—मित्र! मेरे मन में एक प्रश्न उभर रहा है कि एक छोटी-सी सूई पानी में डूब जाती है, पर विशाल जहाज पानी में तैर जाता है। कारण क्या है? दूसरा मित्र बोला—इतना भी नहीं जानते? सूई ने कोई बुरा कर्म किया था पूर्वभव में, इसलिए वह पानी में डूब जाती है और जहाज ने कुछ अच्छे कर्म किए थे, इसलिए यह पानी में तैर जाता है। यह सब कर्म का ही चमत्कार है।

हम कर्म की सीमा को नहीं जानते

शिक्षा का प्रश्न

□ आचार्यश्री महाप्रज्ञ □

बुद्धि और प्रज्ञा—ये चिर-परिचित शब्द हैं। गीता के स्थित-प्रज्ञ और उत्तराध्ययन के प्रज्ञ और महाप्रज्ञ के विशेष अर्थ हैं। आज की शिक्षा-पद्धति में स्मृति का मूल्यांकन किया गया है, पर उसमें बुद्धि का मूल्य कम आंका गया है और प्रज्ञा का मूल्यांकन प्रायः नहीं हुआ है। बुद्धि का संबंध निर्णय और निश्चय से है और प्रज्ञा का संबंध अंतर्दृष्टि और चरित्र से है।

राष्ट्रीय शिक्षक दिवस
5 सितंबर
विशेष

अब्राहम लिंकन दुनिया के चिंतनशील और अंतर्दृष्टि संपन्न व्यक्तियों में से एक माने गए हैं। उनकी पारगामी दृष्टि स्मृति के झरोखे से बाहर पहुंची और उन्होंने प्रज्ञा का सही-सही अर्थ समझा। उन्होंने अपने पुत्र को केवल स्मृति का संग्रहालय बनाना ठीक नहीं समझा। उन्होंने चाहा—मेरा पुत्र स्मृति-संपन्न होने के साथ-साथ बुद्धिमान और प्रज्ञावान भी बने। उन्होंने अपने पुत्र की शिक्षा के संबंध में अध्यापक वर्ग को एक पत्र लिखा। यह पत्र शिक्षा की वास्तविक पद्धति का एक ऐतिहासिक और महत्त्वपूर्ण दस्तावेज कहा जा सकता है। वह पत्र इस प्रकार है—

मेरे पुत्र को शिक्षा ग्रहण करनी है। मैं जानता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति सही नागरिक नहीं होता है और न ही सब छोटे से बड़े होकर सत्य के पुजारी होते हैं, किंतु कृपया मेरे बच्चे को ऐसी शिक्षा दीजिएगा कि वह प्रत्येक दुष्ट व्यक्ति के लिए एक आदर्श नायक और प्रत्येक स्वार्थी राजनीतिज्ञ के लिए एक निष्ठावान संघर्षवादी नायक बने। मेरे बच्चे को यह भी बतलाइएगा कि जहां शत्रु होते हैं, वहां मित्र भी हैं। मैं जानता हूं कि उसे इस तरह की शिक्षा प्राप्त करने में समय लगेगा। मेहनत से कमाया हुआ एक डालर, पांच पौंड से अधिक होता है। उसे जीवन में हारने और जीतने के गौरव को सहर्ष स्वीकार करने की भी शिक्षा दीजिएगा। उसे ईर्ष्या से दूर रखने का प्रयास कीजिए। कृपया उसे मौन होकर हंसने के रहस्य को सिखाइएगा, उसे किताबों के आश्चर्यमय जगत से परिचित कराइएगा और पहाड़ों पर खिले हुए फूल के चिरंतन रहस्य को भी बतलाइएगा। उसे यह सिखाइएगा कि नकल करने से सम्मानपूर्वक

→ 15

महावीर का जीवन-चरित्र पढ़ें। वे कभी किसी से डरे नहीं। वे साक्षात् अभय और निर्भयता की मूर्ति थे। जो भी व्यक्ति आध्यात्मिक विकास करेगा, अपनी चेतना का ऊर्ध्वारोहण करेगा, उसका भय समाप्त हो जाएगा। भय कब पैदा होता है? भय का उत्स कहां है? जब चेतना नाभि के आस-पास होती है तो आदमी को डर लगता है। पदार्थ की परिक्रमा करने वाली चेतना हर समय डरती रहती है कि कहीं ऐसा न हो जाए, वैसा न हो जाए। किंतु, महावीर को कभी डर नहीं लगा। इसलिए नहीं लगा कि उनकी चेतना का ऊर्ध्वारोहण हो गया था। न वे चंडकौशिक से डरे, न अर्जुनमाली से डरे, न संगमदेव से डरे, जिसने मारणांतिक कष्ट दिए।

जब चेतना शरीर के साथ रहती है तो आदमी डरता है। जब चेतना धन के साथ, पदार्थ के साथ रहती है—तो आदमी डरता है। किंतु, जब शरीर, धन, परिवार के बंधन टूट जाते हैं, चेतना इन सबके ऊपर चली जाती है—तो डर-भय सब समाप्त हो जाते हैं। जितना-जितना पदार्थ और शरीरासक्ति—उतना ही ज्यादा डर। एक बात जान लें कि बड़े लोग जितना डरते हैं, उतना छोटे लोग नहीं डरते। बड़े लोगों के भयभीत होने के कई कारण होते हैं।

डर बड़े लोगों को ही ज्यादा है। जहां स्थूल बड़प्पन की छाप लग गई, धन, पदार्थ और ऐश्वर्य हावी हो गया—समझ लें उसी के साथ डर भी शुरू हो जाता है। जिसके पास कुछ भी नहीं, जो अकिंचन है, मात्र भिक्षा पर जीवन निर्वाह करता है, जिसने शरीर को भी अपना नहीं माना—उसके लिए डर कैसा?

आचार्यश्री भिक्षु शरीर की चिंता से मुक्त थे। वे बहुत हद तक महावीर की परंपरा के साधक थे। महावीरवाणी के संपोषक और आराधक थे। उन्होंने महावीरवाणी को अपने जीवन में अक्षरशः सत्यापित करने का प्रयत्न किया। वे कभी किसी से डरे नहीं, किसी को डराया नहीं। जहां उन्हें लगा कि यह मौत का घर है, वहां भी उन्होंने प्रवास किया। शरीर का भय या शरीर की चिंता उन्हें नहीं थी। जब पक्का फैसला कर लिया कि हमें अभीष्ट की प्राप्ति करनी है, शरीर मेरे लिए साध्य नहीं है, साधन है—फिर उन्हें किसी तरह का कोई भय नहीं रह गया।

कोई भी धार्मिक हो, जो संवत्सरी-पर्व के संदेश को

→ 16

इसीलिए प्रत्येक बीमारी, मृत्यु और अन्यान्य निमित्तों के साथ कर्म का संबंध जोड़ देते हैं। कर्म के द्वारा भी कुछ होता है—यह यथार्थ है, पर सब-कुछ कर्म के द्वारा ही होता है—यह मिथ्या है। यदि सब-कुछ कर्म के द्वारा ही होगा तो कर्म इतना व्यापक बन जाएगा कि उसकी कोई सीमा नहीं रहेगी। फिर पुरुषार्थ का क्या होगा? फिर काल, स्वभाव और नियति का क्या प्रयोजन होगा? पुरुषार्थ आदि का अपना-अपना प्रभाव है, अपना-अपना कार्य है। वे सब व्यर्थ हो जाएंगे।

ध्यान करने वाले यदि यह सोच लें कि अच्छा कर्म किया था, इसलिए ध्यान-साधना में आ गए तो यह भ्रांति होगी। तब कर्म ध्यान का साधक नहीं, बाधक बन सकता है, ध्यान में विघ्न उपस्थित कर सकता है। ध्यान करने या कराने में सहयोग देना कर्म का कार्य नहीं है।

हमें चेतना और कर्म की सीमा का पूरा अवबोध करना चाहिए। चैतन्य की अपनी सीमा है और कर्म की अपनी सीमा है। चैतन्य की दो धाराएं हैं। एक है—राग-द्वेष की धारा और दूसरी है—निर्मल चैतन्य की धारा। जहां राग-द्वेष की धारा है, वहां उसके साथ कर्म का संबंध खोजा जा सकता है। जहां निर्मल चेतना की धारा है, वहां कर्म का कोई संबंध नहीं होता।

ध्यान करने का प्रयोजन है—वर्तमान क्षण का अनुभव करना। वर्तमान क्षण का अनुभव राग-द्वेष-मुक्त क्षण का अनुभव है। जब हम राग-द्वेष-मुक्त क्षण का अनुभव करते हैं, उस समय कर्म का योग नहीं होता, कर्म का बंध नहीं होता। उस समय हम कर्म से अतीत रहते हैं, उस समय केवल द्रष्टाभाव, ज्ञाताभाव बना रहता है। जहां केवल जानना, केवल देखना होता है, वहां कर्म का संबंध नहीं होता। यह केवल जानना, केवल देखना—कर्म के द्वारा नहीं होता, कर्म से अलग होने पर होता है। यह शुद्ध चेतना का प्रयोग है। इसे दार्शनिक भाषा

में पारिणामिक भाव कहा जाता है। यह चेतना का परिणमन है, जिसके साथ कर्म का कोई संबंध नहीं है।

जब-जब मनुष्य राग-द्वेष के भाव में जाता है, उस समय राग-द्वेष से जुड़ा हुआ चित्त चैतसिक कर्म बन जाता है और जब-जब मनुष्य चैतसिक कर्म में होता है, उस समय कुछ परमाणुओं का संग्रहण होता है। कुछ परमाणु हमारे साथ जुड़ जाते हैं, हमारे सूक्ष्मतर शरीर के साथ जुड़ जाते हैं। वे पौद्‌गलिक या पारिमाणिक कर्म बन जाते हैं। हम इन दोनों प्रकार के कर्मों से जुड़े हुए हैं।

इस स्थिति में एक नियम बन गया कि जहां चैतसिक कर्म है, राग-द्वेष-युक्त चैतन्य है—वहां परमाणुओं का संग्रहण होगा। वे कर्म-परमाणु उस राग-द्वेष के अनुरूप ही अपना परिणाम प्रकट करेंगे। इस सिद्धांत से कुछ बातें खोजी जा सकती हैं, कुछ घटनाओं को समझा जा सकता है।

मुनि स्कंधक बहुत बड़े तपस्वी संत थे। किसी कारणवश उनके शरीर की सारी चमड़ी को उधेड़ दिया गया। मुनि उस अत्यंत वेदनामय स्थिति में भी समभाव में रहे। इस घटना का विश्लेषण किया गया। यह प्रश्न उठा कि ऐसा क्यों हुआ? मुनि के शरीर की चमड़ी क्यों उधेड़ी गई? इसके संबंध-सूत्र की खोज प्रारंभ हुई। उस खोज से यह ज्ञात हुआ कि स्कंधक अपने पूर्वभव में 'काचर' छील रहे थे। उन्होंने काचर को इतनी निपुणता से छीला कि उसका छिलका संलग्न रूप से उतर गया। वे अपनी इस निपुणता को सराहने लगे। अपनी निपुणता के प्रति इतनी मूर्च्छा और आसक्ति हो गई कि वे अपनी दक्षता पर फूले नहीं समाए। आसक्ति तीव्र होती गई। उस तीव्र आसक्ति ने इस प्रकार के चित्र का निर्माण किया कि सघन और जटिल परमाणुओं की ओर आकर्षण होता चला गया। वे कर्म-परमाणु जब विपाक में आए तब स्कंधक के शरीर की चमड़ी उधेड़ दी गई।

इस संबंध-सूत्र की खोज में कर्म तक पहुंचा गया। कर्म के तीन प्रकार हैं—चित्त का

असफल होना अधिक गरिमामय है। उसे बतलाइएगा कि असफलता के कारण जो आंसू टपके, उनमें कोई लज्जा नहीं है। उसे यह भी बतलाइएगा कि चाहे दुनिया उसे गलत समझे, फिर भी अपने ऊपर भरोसा रखे। उसे भद्र लोगों के साथ भद्रता और दुष्टों के साथ सख्ती से पेश आना चाहिए। मेरे पुत्र को बराबर बताते रहिएगा कि वह भीड़ का एक आदमी न बने। उसे बतलाइएगा कि वह सबकी तो सुने, लेकिन सत्य की चलनी से छानकर उसे सुने और देखे, फिर ऐसे सत्य में जो भलाई हो, उसे ही ग्रहण करे।

यदि आपके लिए संभव हो तो उसे दुख के समय हंसना और सुख-दुख बोध से ऊपर उठने की सीख दीजिएगा। कृपया उसे अधिक मधुरता से बचने को कहिएगा। उसे यह भी बतलाइएगा कि अपनी बुद्धि एवं अपना पसीना बेचते समय सबसे अधिक कीमत लगाने वाले को ही बेचे, किंतु अपने हृदय और आत्मा के मूल्य को भी समझे।

लोहा आग में जलने से मजबूत होता है, इसलिए उसे स्नेह का ताप दीजिए, केवल लाड़ नहीं। उसे धैर्यवान होने का साहस दीजिए और शौर्य के लिए धैर्य की शिक्षा दीजिए। उसे अपने कृत्यों में गरिमामय आस्थाबोध का पाठ पढ़ाइएगा, तभी वह मानवता की गरिमा में विश्वास करेगा।

—*अब्राहम लिंकन*

अब्राहम लिंकन का पत्र कई प्रश्न पैदा कर रहा है। क्या हारने और जीतने के गौरव को सहर्ष स्वीकार करने की बात शिक्षा सिखा सकती है? ईर्ष्या से दूर रखने का पाठ पढ़ा सकती है? नकल करके सफल होने से सम्मानपूर्वक असफल होना अधिक गरिमामय है—क्या आज की शिक्षा-पद्धति में इसका आधार खोजा जा सकता है? क्या दुख के समय हंसना और सुख-दुख बोध से ऊपर उठने का पाठ किसी विद्यार्थी को पढ़ाया जाता है? क्या धैर्य के विकास की बात आज वांछनीय मानी जाती है?

वर्तमान जीवन की अधृति, असहिष्णुता, अवसरवादिता और विलासिता की बढ़ती ने परिवार और समाज को समस्याओं के घेरे में बंदी बना दिया है। उस अवस्था में उक्त पत्र और अधिक प्रासंगिक बन गया है। किंतु, आश्चर्य है कि हमारे शिक्षाविद् और शिक्षा अधिकारी इस प्रासंगिकता के साथ आंख-मिचौनी कर रहे हैं। उनका भरोसा जितना स्मृति और बुद्धि के विकास पर है, उतना विद्यार्थी को एक निष्ठावान और दायित्वपूर्ण व्यक्ति बनाने पर नहीं है। पढ़े-लिखे लोगों की भीड़ जीविका के लिए नौकरी की तलाश में इधर-उधर परिक्रमा कर रही है। तब सोचने को बाध्य होना पड़ा है कि

→ 17

कर्म, घटना का कर्म और परमाणु का कर्म। चित्त की तीन अवस्थाएं होती हैं—तीव्र, मध्यम और मंद। चित्त में राग-द्वेष तीव्र होता है, मध्यम होता है और मंद होता है। एक आदमी अत्यंत तीव्र आसक्ति से प्रवृत्ति करता है। वह उसके चित्त की तीव्र अवस्था है। एक आदमी जीवन-यापन के लिए नानाविध प्रवृत्तियों में प्रवृत्त होता है। न उसमें तीव्र आसक्ति है और न राग-द्वेष। वह केवल जीवन चलाने के लिए प्रवृत्ति करता है, वह उसके चित्त की मंद अवस्था है। एक आदमी प्रवृत्ति करता है और कभी-कभी उसकी सराहना भी कर देता है। उसकी प्रवृत्ति में कुछ आसक्ति रहती है और कुछ अनासक्ति। वह उसके चित्त की मध्यम अवस्था है। घटना में कोई अंतर नहीं आता। घटना एक ही होती है, पर उसके साथ चित्त की वृत्तियां भिन्न-भिन्न बन जाती हैं। उन वृत्तियों के आधार पर कर्म-परमाणुओं का संग्रहण भी होता जाता है। जब मंद चित्त से कर्म-परमाणुओं का आकर्षण होता है, वह अल्प और अल्पविपाकी होता है। वे कर्म-परमाणु अन्य शक्ति वाले होते हैं। जब तीव्र चित्त से कर्म-परमाणुओं का आकर्षण होता है, तब वह आकर्षण सघन और बहु-विपाकी होता है। उनका संश्लेष गाढ़ होता है और वे तीव्र विस्फोट करने में समर्थ होते हैं।

स्कंधक ने काचर छीला और बाद में उनकी चमड़ी उधेड़ी गई, पर दुनिया में काचर को न जाने कितने लोग छीलते हैं, किन-किन की चमड़ी उधेड़ी जाएगी? घटना का प्रश्न नहीं है, काचर का प्रश्न नहीं है, सबसे बड़ा प्रश्न है—हिंसा का। यह जरूरी नहीं है कि काचर का छिलका उतारने वाले की चमड़ी छीली जाए, मारने वाले को मारा जाए। यह अनिवार्यता सदा नहीं बनती, कभी-कभी बनती है। हिंसा करने वाला, हत्या करने वाला यदि तीव्र आसक्ति से हिंसा-चित्त का निर्माण करता है तो उसकी भी वही गति है। छाल उतारने वाले की चमड़ी उधेड़ी जाती है; व्याख्या में बहुत अंतर आएगा। सामान्यतः कहा जाता है, किसी का तुमने ऋण दबाया होगा, इसलिए तुम्हारा ऋण कोई दूसरा दबा रहा है। तुमने किसी के लड़के को मारा होगा, किसी के घर चोरी की होगी, किसी के घर डाका डाला होगा, इसीलिए तुम्हारे लड़के को किसी ने मार डाला, किसी ने तुम्हारे घर चोरी की, किसी ने तुम्हारे घर डाका डाला। ऐसा कोई नियम नहीं है। ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। तीव्र अध्यवसाय से किया जाने वाला कर्म उसी रूप में परिणत होता है। मध्यम और मंद परिणाम से जो प्रवृत्ति की जाती है, कर्म किया जाता है, तो जरूरी नहीं है कि वैसा का वैसा फिर घटित हो। जब प्रवृत्ति के साथ तीव्र चित्त का निर्माण हो जाता है तो वैसा भी घटित हो सकता है।

इस प्रसंग से जीवन का एक रहस्य उद्घाटित होता है। आदमी को कब और कैसे कर्म करना चाहिए? कर्म का अर्थ है—प्रवृत्ति। प्रवृत्ति तब करनी चाहिए जब अनिवार्यता हो।

समझने का प्रयत्न करता है, जो महावीर के जीवन को समझने का प्रयत्न करता है, जो आचार्यश्री भिक्षु के संदेश को समझने का प्रयत्न करता है—उसका सारतत्त्व यही है कि चेतना का ऊर्ध्वारोहण करो, शरीर के बंधन से बंधे मत रहो। चेतना शरीर से बंधकर रहेगी तो वह नाभि के नीचे रहेगी। तब यही स्थिति बनेगी कि बात-बात पर कलह और संघर्ष होगा।

क्रोध, मान, माया, लोभ—ये चारों भीतर के दोष हैं। क्षमा, विनम्रता या मृदुता, सरलता और संतोष—ये चार अध्यात्म के गुण हैं। जब क्रोध, अहंकार, मान, माया, लोभ आदि होते हैं तो चेतना अध्यात्म के प्रतिकूल हो जाती है, वह पदार्थ के जगत में चली जाती है। जब क्षमा, मृदुता, विनम्रता का विकास होता है तो चेतना आध्यात्मिक बन जाती है। संवत्सरी सर्वोत्तम पर्व इसलिए है कि यह पर्व हमें आध्यात्मिक चेतना के विकास का अवसर देता है।

संवत्सरी का संदेश भय और शत्रुता के भाव को निर्मूल करने का संदेश है। भय का मतलब ही है कि शत्रुता का एक बीज अपने भीतर बो लिया, वह हर समय डराता रहेगा।

आठ दिन का यह समय अध्यात्म-चिंतन का समय है। समस्या के समाधान के लिए इससे उपयुक्त समय और कोई नहीं हो सकता। हर समस्या का आध्यात्मिक समाधान होता है। आठ दिन का यह समय प्रयोग का समय है, जिसमें हम समस्याओं का हल खोजें। समस्या चाहे शरीर की हो, मन की हो, भावों की हो—कोई भी समस्या हो, उस पर इन आठ दिनों में विचार होना चाहिए। ऐसा होगा तो पर्युषण-पर्व एक प्रायोगिक अभिक्रम बन जाएगा। हमारे जीवन को समस्यामुक्त बनाने वाला पर्व बन जाएगा। एक निराला पर्व कहलाएगा। ●

अनेक लोग इस सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं कि प्रतिपल कर्म-प्रवृत्ति करते रहना चाहिए। कोई-न-कोई काम करते रहना चाहिए। हम इस बात से सहमत नहीं हैं। काम या प्रवृत्ति हमारा उद्देश्य नहीं होना चाहिए। काम प्रयोजन की निष्पत्ति है। काम उतना हो, जितनी अनिवार्यता है। काम आवश्यकता से जुड़ा होना चाहिए। आवश्यकता की पूर्ति के लिए काम—यह है काम का उद्देश्य।

दो प्रश्न हैं। पहला प्रश्न है—कार्य कब करना चाहिए? जब आवश्यकता हो तब कार्य करना चाहिए। दूसरा प्रश्न है—कार्य क्यों करना चाहिए? कार्य जीवन-यात्रा को चलाने के लिए करना चाहिए। प्रवृत्ति के बिना जीवन-यात्रा नहीं चलती, इसलिए प्रवृत्ति करनी होती है। ये दो उद्देश्य हो सकते हैं। तीसरा प्रश्न है—कर्म कैसे करना चाहिए? यह भी महत्त्वपूर्ण बात है। यहां भी अध्यात्मवाद या कर्मवाद का रहस्य उद्घाटित होता है। जिस व्यक्ति ने कर्मवाद को नहीं समझा, उसने अध्यात्म को नहीं समझा। जिसने अध्यात्म को नहीं समझा, उसने कर्मवाद को नहीं समझा। दोनों परस्पर जुड़े हुए हैं। अध्यात्मवाद का रहस्य है कि कर्म राग-द्वेष-रहित भाव से होना चाहिए। राग-द्वेष जितना मंद हो सके, उतना करना चाहिए, उससे जो कर्मबंध होगा वह मंद होगा। कर्म के साथ जुड़ा हुआ है प्रतिकर्म अर्थात् कर्म का बंध। शास्त्रकार कहते हैं—

उल्लो सुक्को य दो छूढ़ा, गोलिया मट्टिया मया।
दो वि आवडिया कुड्डे, जो उल्लो सो तत्थ लग्गई।।

मिट्टी के दो गोले हैं। एक गीला है और दूसरा सूखा है। गीली मिट्टी का गोला भींत पर फेंकने से वह चिपक जाता है और सूखा गोला भींत पर लगकर जमीन पर आ गिरता है। जिस प्रवृत्ति के साथ राग-द्वेष की तीव्रता होती है, वहां मिट्टी गीली हो जाती है और वह भींत पर चिपक जाती है। उससे कर्मबंध तीव्र होता है। जिस प्रवृत्ति के साथ राग-द्वेष

शिक्षा के साथ बुनियादी तालीम को जोड़ा जाए, जिससे बेरोजगारी की बाढ़ न आए। एक विद्यार्थी विद्यालय से निकलकर अपना धंधा कर रोजी-रोटी कमा सके। यह शिक्षा के क्षेत्र में अगला कदम है। इसकी भी अब तक लगभग उपेक्षा हो रही है। क्या बुनियादी तालीम से ही शिक्षा की समस्या सुलझ जाएगी? जिन राष्ट्रों में बेरोजगारी नहीं है, पढ़े-लिखे लोगों के लिए नौकरी की कमी नहीं है। मानवीय-मूल्यों की समस्या वहां भी कम नहीं है। हिंसा, अपराध, आक्रामकता, बौद्धिक विकास के मायाजाल, भ्रष्टाचार और अनुशासनहीनता से बचने के लिए नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा अत्यंत अनिवार्य है।

तात्पर्य की भाषा में विद्यार्थी के लिए शिक्षा की त्रिपदी बनती है—बौद्धिक विकास की शिक्षा, उत्पादक श्रम की शिक्षा और आध्यात्मिक विकास की शिक्षा।

आध्यात्मिक शिक्षा का प्रश्न बहुत उलझा हुआ है। नैतिक शिक्षा की चर्चा शिक्षाविदों ने बार-बार की है। उसे आध्यात्मिक शिक्षा का ही एक अंग माना गया है। यह चर्चा भी एक उलझन बनकर रह गई है। विभिन्न संप्रदायों की उपस्थिति में किस संप्रदाय द्वारा मान्य आध्यात्मिकता और नैतिकता की शिक्षा विद्यार्थी को दी जाए, यह उलझन का एक वलय बना हुआ है, जिसमें घुसने का कोई दरवाजा नहीं है।

आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा कैसे दी जाए—यह दूसरी समस्या है। बहुत-सारे शिक्षाविदों ने इसका एक समाधान सूत्र दिया है। वह यह है कि विद्यार्थी को महापुरुषों की जीवनियां पढ़ाई जाएं। कहानियों के माध्यम से नैतिक नियमों के प्रति आकर्षण पैदा किया जाए, नैतिकता के सिद्धांत और नियम पढ़ाए जाएं। इस समाधान सूत्र को गलत तो नहीं कहा जा सकता, किंतु सफल-सूत्र भी नहीं कहा जा सकता।

आध्यात्मिकता और नैतिकता मनुष्य की आंतरिक आस्था का प्रश्न है। इस आस्था को जगाने के लिए आंतरिक परिवर्तन जरूरी है। राष्ट्र-प्रेम, मानवता का प्रेम, संतुलित समाज-व्यवस्था और पारिपार्श्विक वातावरण—सब उसमें सहयोगी बनते हैं। आध्यात्मिक और नैतिक विकास के मूल में है व्यक्ति का आंतरिक परिवर्तन। पर, जब तक उसके प्रति हम आकर्षित नहीं होंगे, हम सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और नैतिक चेतना को जगाने में सफल नहीं हो सकेंगे। राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन की शिक्षा की कल्पना पूर्ण नहीं की जा सकेगी। इसलिए शिक्षा के बारे में एक बार फिर गंभीर चिंतन जरूरी है। ●

मंद होता है, वह मिट्टी सूखी होती है। वह भींत पर चिपकती नहीं, उससे कर्मबंध मंद होता है। कर्म-परमाणु आते हैं, आत्म-प्रदेशों का स्पर्श कर झड़ जाते हैं।

कर्म कैसे करना चाहिए—यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। इससे अध्यात्मवाद, ध्यान का सही मार्ग उद्‌घाटित होता है। यदि ध्यान के द्वारा हमारी प्रवृत्ति में कोई परिवर्तन न आए, कर्म की धारा न बदले और कर्म कैसे करें—यह सिद्धांत फलित न हो, तो ध्यान करने का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। केवल आंखें मूंदकर बैठ जाना, कुछ क्षणों तक शांति या विश्राम का अनुभव कर लेना—इतना ही पर्याप्त नहीं है। ध्यान की निष्पत्ति है—'कर्म कैसे करें' की अनुभूति।

कर्म कैसे करें—यह अध्यात्मवाद का 'नो हाउ' का सिद्धांत है। जब तक यह नहीं जाना जाता, तब तक ध्यान करने की कोई सार्थकता नहीं होती। ध्यान की सार्थकता तभी होती है, जब हमें यह बोध हो जाए कि हम प्रवृत्ति करें तो कैसे करें? प्रवृत्ति के साथ राग-द्वेष की धारा अत्यंत मंद हो, राग-द्वेष रहे ही नहीं। यह तभी संभव है, जब व्यक्ति वीतराग बन जाता है। जब तक वह वीतराग नहीं बनता, तब तक राग-द्वेष सर्वथा क्षीण नहीं होता, मंद अवश्य हो सकता है। जब राग-द्वेष मंद होता है, तब कर्म का दोष भी मंद हो जाता है। बहुत-सारे लोग इस बात को नहीं जानते।

स्कंधक ने काचर को छीला, इसलिए चमड़ी उधेड़ी गई। यह मूल बात नहीं है। लोगों ने केवल स्थूल बात पकड़ी। मूल गहराई में छिपा रहता है। स्कंधक ने काचर को छीला, उसका परिणाम नहीं था कि उनकी चमड़ी उधेड़ी गई। परिणाम इसलिए आया कि काचर कैसे छीला? किस दक्षता से छीला? कैसे के साथ ही राग-द्वेष की तीव्रता, मंदता का अनुमान होता है और उसी के आधार पर कर्मबंध होता है। कैसे खाएं? कैसे चलें? कैसे बोलें? कैसे बैठें? कैसे सोएं? यही तो महत्त्वपूर्ण होता है। कैसे का फलित है—भावक्रिया। जो कार्य किया जाए, उसी में तन्मय हो जाना। चलते समय केवल चलें, और कुछ न करें—यह है कैसे चलें का कर्म। इसी प्रकार समस्त क्रियाओं के साथ भावक्रिया होनी चाहिए। चलते समय शरीर चले, मन न चले—यह है गमनयोग। विषण्णयोग पद्मासन आदि की मुद्रा में किया जाता है। खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करना स्थानयोग है। गमनयोग है—चलते-चलते ध्यान करने की उत्कृष्ट स्थिति। इसमें शरीर चल रहा होता है, मन स्थिर रहता है।

ध्यान से दो बातें स्पष्ट रूप से सीख ली जाती हैं—कब करना, क्यों करना? तीसरी बात है—कैसे करना? जब यह तीसरी बात समझ में आ जाती है, तब जानना चाहिए कि ध्यान निष्पन्न हो रहा है, ध्यान फलित हो रहा है। जो बीज बोया था, वह अब पौधा बन रहा है, पेड़ बनकर फल देने वाला है।

ध्यान के संदर्भ में हमने कर्मवाद की चर्चा की। एक महत्त्वपूर्ण सूत्र हमने समझा कि ध्यान से हमारी चेतना सूक्ष्म बने, चित्त और मन की स्थूलता मिटे। मन सूक्ष्म बने, चित्त सूक्ष्म बने, वाक् सूक्ष्म बने और हम सूक्ष्म सत्य के नियमों को पकड़ सकें। उन नियमों के आधार पर हम अतीत को व्याख्यायित कर सकते हैं और भविष्य को जान सकते हैं। आत्म-निरीक्षण के क्षणों में प्रत्येक व्यक्ति अपने अतीत को पढ़ सकता है और भविष्य को जान सकता है। वह जान सकता है कि अतीत में मैं क्या था और भविष्य में मरकर क्या होऊंगा? जिस व्यक्ति ने अपने चित्त को पढ़ना प्रारंभ कर दिया, उसने अपने भावी जीवन को देखना प्रारंभ कर दिया। वह चैतसिक कर्म अथवा आस्रव को पढ़ना प्रारंभ कर देता है। अतीत और भविष्य—दोनों के चित्र जब उद्‌घाटित होते हैं, तब वर्तमान की घटनाओं का अच्छा विश्लेषण किया जा सकता है। उस स्थिति में दूसरों पर दोषारोपण करने की बात समाप्त हो जाती है। फिर व्यक्ति घटना के लिए स्वयं को उत्तरदाई मानने लग जाता है। जब घटना घटित होती है, तब वह यह नहीं कहता कि अमुक-अमुक इसके लिए उत्तरदाई हैं। वह कहता है, मैं ही इसका उत्तरदाई हूं। दीपक जल रहा है। हवा का झोंका आया। दीपक बुझ गया। तेल भी समाप्त हो चुका था, पर सारा दोष हवा को दिया जाएगा। कहा जाएगा—हवा का झोंका आया और दीपक बुझ गया। यह निमित्त पर दोष देने की बात है। ध्यान के द्वारा जिसकी चेतना जाग जाती है—वह व्यक्ति पहले उपादान को देखता है, फिर निमित्त पर ध्यान देता है। वह निमित्तदर्शी नहीं, उपादानदर्शी बन जाता है। यह हमारी चेतना का आध्यात्मिक विकास है। जिस व्यक्ति की आध्यात्मिक चेतना जाग जाती है, वह उपादान की दृष्टि को प्राप्त हो जाता है। वह निमित्त को गौण मानकर देखता है। ❖

आत्मतत्त्व और उसका फल

❑

काका कालेलकर

आत्मतत्त्व अतींद्रिय है। इंद्रियों के द्वारा वह पाया नहीं जाता, पकड़ा नहीं जाता। वह बुद्धिग्राह्य है। बुद्धि ही उसकी कल्पना कर सकती है, उसे ग्रहण कर सकती है—'बुद्धिग्राह्यम् अतींद्रिय।' आत्मतत्त्व का अनुभव अथवा साक्षात्कार बुद्धि की मदद से नहीं, अपितु आत्मा के द्वारा ही हो सकता है। यह अनुभव जब सबसे पहले हुआ होगा तब कितना आनंद हुआ होगा! पता नहीं, कितने घंटे या कितने दिन उसी आनंद की मस्ती में वह रहा होगा! कुछ नया तत्त्व, कोई नया सिद्धांत जब समझ में आता है, अथवा पाया जाता है, तब अन्वेषणकर्ता के लिए वे क्षण एक महोत्सव-सा होते हैं। प्राचीन ऋषियों को भी जब तत्त्व-चिंतन करते-करते आत्मतत्त्व का आविष्कार हुआ होगा, तब उनको भी कल्पनातीत आनंद हुआ होगा। बहुत-से शोध अथवा आविष्कार इंद्रियों के द्वारा होते हैं और बाद में बुद्धि के द्वारा उस चीज का ज्ञान विकसित होता है।

यही बात गीता में कही है—'आत्मना आत्मानं पश्यन् आत्मनि तुष्यति'—आत्मा के द्वारा ही आत्मा को देखकर, पाकर वह आनंद पाता है। वह आनंद भी आत्मा की मदद से उसे मिलता है, क्योंकि वह बाह्य आनंद नहीं, अपितु आंतरिक आनंद होता है—'आत्मनि तुष्यति'—

अंतःकरण द्वारा, बुद्धि और भावना के द्वारा समस्त ज्ञान और विज्ञान प्राप्त करने के बाद मनुष्य अधिक सोचने लगा, तब उसे आत्मतत्त्व की प्रथम कल्पना हुई। वह भी कोई मामूली बात नहीं थी। यह सोचना कि मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के अंदरूनी सहयोग के लिए एक सर्वसामान्य तत्त्व होना चाहिए और उसका स्वरूप इन सब बातों से भिन्न होना चाहिए—यह बहुत बड़ी बात थी। मनुष्य ने अपनी बुद्धि से सर्वप्रथम आत्मतत्त्व की कल्पना की होगी। बाद में वह उसे वह प्राप्त करने का रास्ता ढूंढ़ने लगा। उस रास्ते को हम मनन-चिंतन कह सकते हैं। उसी में उत्कटता आने पर वह ध्यान बनता है और उसी का अंतिम स्वरूप तदाकार बनने का है। उसी को समाधि कहते हैं।

आत्मा के द्वारा आत्मा का ज्ञान प्राप्त करके जिस अद्वैत का आनंद मिलता है, उसे आत्मयोग कहना चाहिए। आत्मयोग एक अद्भुत शक्ति भी है। इस शक्ति के द्वारा ही एक मनुष्य दूसरे को—सिद्ध पुरुष साधक को—आत्मज्ञान करा सकता है। फिर गुरु-शिष्य दोनों आत्मरति बन जाते हैं।

जब प्राचीन ऋषि जीवन के रहस्य को समझने की कोशिश करने लगे, तब जगत की असंख्य चीजों को अपनाकर उनके द्वारा ज्ञान, सामर्थ्य और आनंद प्राप्त करने के लिए इंद्रियों की सहायता लेनी पड़ी थी। उन्होंने अनुभव प्राप्त करने के लिए साधनरूप इंद्रियों को 'करण' कहा। कर्म करने के साधन को 'करण' कहते हैं। जैसे किसान का हल है, बढ़ई के

उपकरण हैं, वैसे ही इंद्रियां मनुष्य के 'करण' हैं।

इन सब इंद्रियों के बीच काम करके उनसे प्राप्त होने वाले अनुभव को अपनाना, भिन्न-भिन्न इंद्रियों से मिलने वाले ज्ञान के बीच समन्वय करके उनको एकरूप करना और सब अनुभवों का चिंतन करके उसकी गहराई में उतरना, यह सब मन का व्यापार है। इंद्रियां अगर शरीर के औजार हैं, तो इन सब औजारों के साथ सहयोग करने वाला मन अंदरूनी औजार है। इसलिए उसे दार्शनिकों ने अंतःकरण कहा है। मन, बुद्धि, भावना, चित्त—ये सब अंतःकरण ही हैं।

इंद्रियों के द्वारा ज्ञानप्राप्ति की और चीजें बनाने के साधन-रूप तरह-तरह के औजार मनुष्य ने बनाए। मनुष्य ही एक प्राणी है, जो अपनी इंद्रियों की मदद के लिए औजार बना सकता है और काम में ला सकता है।

अंतःकरण द्वारा, बुद्धि और भावना के द्वारा समस्त ज्ञान और विज्ञान प्राप्त करने के बाद मनुष्य अधिक सोचने लगा, तब उसे आत्मतत्त्व की प्रथम कल्पना हुई। वह भी कोई मामूली बात नहीं थी। यह सोचना कि मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के अंदरूनी सहयोग के लिए एक सर्वसामान्य तत्त्व होना चाहिए और उसका स्वरूप इन सब बातों से भिन्न होना चाहिए—यह बहुत बड़ी बात थी। मनुष्य ने अपनी बुद्धि से सर्वप्रथम आत्मतत्त्व की कल्पना की होगी। बाद में वह उसे प्राप्त करने का रास्ता ढूंढ़ने लगा। उस रास्ते को हम मनन-चिंतन कह सकते हैं। उसी में उत्कटता आने पर वह ध्यान बनता है और उसी का अंतिम स्वरूप तदाकार बनने का है। उसी को समाधि कहते हैं।

इंद्रिय-शुद्धिरूपी तपस्या के द्वारा आत्मशुद्धि करने पर ध्यानशक्ति बढ़ती है। उस शक्ति के द्वारा ध्यान में उत्कटता आती है और फिर धीरे-धीरे मनुष्य को आत्मा का सुख यानी आनंद मिलना शुरू होता है।

आत्मा सर्वत्र है। सब मनुष्यों में, सब तरह के लोगों में तो है ही, लेकिन इतर प्राणियों में भी है। आत्मा का अनुभव होने पर सबके साथ हमारा आत्मिक ऐक्य हम अनुभव करने लगते हैं। कई लोग अच्छे होते हैं, कई लोग बुरे होते हैं। रोजमर्रा के व्यवहार में उनके साथ अलग-अलग ढंग से पेश आना पड़ता है। मनुष्य में गुण होते हैं। दोष होते हैं। कमजोरियां होती हैं। पवित्रता होती है। दुष्टता होती है। उसमें भी समय-समय पर परिवर्तन हो सकता है। सबके साथ हम एक तरह से पेश नहीं आ सकते। भलाई को हम प्रोत्साहन देते हैं, उसका अभिनंदन करते हैं। बुराई को कोसते हैं। बुरे आदमी को टालते हैं। यह सब चलेगा, लेकिन जिस किसी को आत्मा का साक्षात्कार हुआ है, वह सभी के साथ अपना एक अद्‌भुत, सार्वभौम, स्थाई आत्मीयता का अनुभव करता रहता है।

ऐसे लोगों की बुराई देखकर जहां पहले चिढ़ आती थी, उनके बारे में मन में द्वेष होता था—अब द्वेष नहीं होगा, किंतु उत्कट दुख होगा। करुणा जगेगी, उसके दोष अंत में जाकर मेरे ही दोष हैं, यह पहचानकर मैं अपने दोष दूर करने के लिए जैसे तरह-तरह की कोशिशें करूंगा, वैसे ही उस दुष्ट या पापी मनुष्य के दोष अगर मुझसे दूर हो सकते हैं, तो उस दिशा में मैं कुछ-न-कुछ करूंगा ही। हां, अगर मैं अच्छा साधक हूं तो अपने दोषों को गुण समझने की गलती नहीं करूंगा। मुझमें मोह न होने से मैं अपने या दूसरों के दोष मोह के कारण बरदाश्त नहीं करूंगा, लेकिन धैर्य के साथ अपने और दूसरों के दोष दूर नहीं कर सका, तो सहन करूंगा। और हो सके, उतने सुधार की जबरदस्त कोशिशें करूंगा। जिस तरह मैं अपने दोष देख और समझकर भी अपना त्याग नहीं करता, उसी तरह कोई दोषी है, इसीलिए उसका त्याग नहीं करूंगा। अगर करना ही पड़े, वह भी लाचारी के कारण, अथवा मदद के रूप में, उस आदमी को सुधारने के लिए, उसका त्याग करूंगा, न कि द्वेष से या क्रोध से या तिरस्कार से।

उपनिषद कहता है कि आत्मतत्त्व हरएक में है, यह पहचानने के बाद सब प्राणी मेरे आत्मीय बनते हैं। सब भूतों को अपने में और अपने को सब भूतों में देखने पर अपने में जुगुप्सा नहीं रहती। जुगुप्सा का अर्थ है तिरस्कार (अलग करने की और अलग बनने की इच्छा)। ऐसी इच्छा खड़ी न होगी तब मेरे हृदय में विश्वात्मैक्य भाव (सबके प्रति पूरी आत्मीयता) सिद्ध हो जाएगा। उपनिषद् कहता है—'तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वं अनुपश्यतः।'

वैज्ञानिक महत्त्व का शोध होने पर बड़ा उत्सव करते

शेष पृष्ठ 47 पर

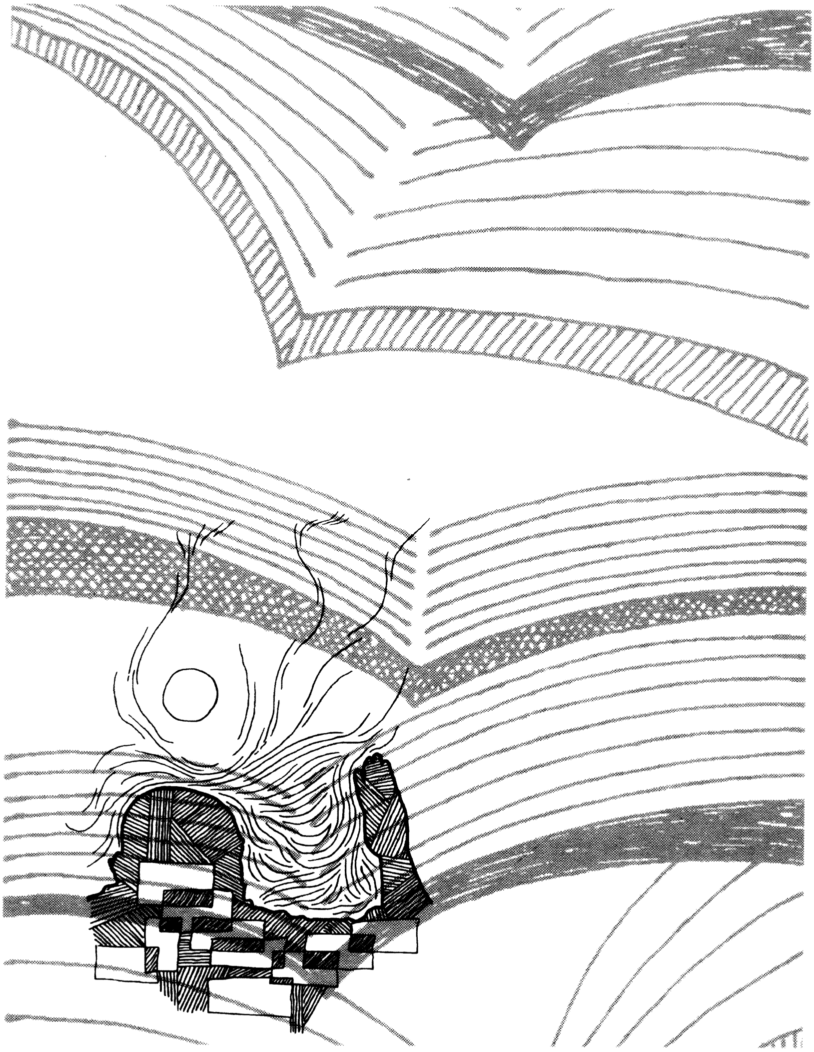

अनुभूति

श्रद्धा नितांत आवश्यक है, लेकिन जिज्ञासा-रहित श्रद्धा एक तरह से चिंतन को मृत्यु की ओर धकेल देती है। चिंतन नष्ट हुआ तो फिर छपे शब्द, चाहे उन्हें कितना ही रटते रहें, वे न मनुष्य को दृष्टि दे सकते हैं, न आगे बढ़ने की प्रेरणा। जो श्रद्धा के वास्तविक अर्थ को जानता है, वही ज्ञान का सच्चा अधिकारी होता है, क्योंकि ज्ञान भी न तो एकांगी होता है, न जड़।

—विष्णु प्रभाकर

आचार्य भिक्षु चरमोत्सव
25 सितंबर
पावन स्मरण

साधना की दीवट पर मर्यादा का दीप

❑

युवाचार्यश्री महाश्रमण

आस्था, आचारनिष्ठा और उत्कृष्ट मेधा के संगम के रूप में आचार्यश्री भिक्षु हमारे सम्मुख एक उदाहरणस्वरूप हैं। कुछ व्यक्ति आचारनिष्ठ होते हैं, पर उनमें प्रज्ञा व औत्पातिकी बुद्धि नहीं होती है। कुछ व्यक्ति आस्थाशील होते हैं, पर आचार-पालन में दुर्बलता का अनुभव करते हैं और कुछ व्यक्ति नवोन्मेषीय प्रतिभा से संपन्न होते हैं, पर श्रद्धा व चरित्र में खरे नहीं उतर पाते। आचार्यश्री भिक्षु में जहां आचारनिष्ठा का अजस्र-स्रोत प्रवाहित था, वहीं प्रज्ञा और जिनवाणी के वे प्राणवान प्रमाण थे। इसी के साथ अटूट आस्था का साहचर्य भी उनमें प्रतिक्षण प्रतिबिंबित होता रहता था। इस तथ्य को निदर्शित करने वाली निम्नलिखित पंक्तियां ज्ञातव्य हैं—

अधेन अठावीसमां उत्तराधेन में,
मोष मार्ग कह्या च्यार।
ग्यांन दरसण चरित ने तप विनां,
नहीं श्रद्धुं धर्म लिगार।।
देव अरिहंत निर्ग्रंथ गुर मांहरे,
केवलीए भाखित धर्म।
ए तीनूंई तत्व सेंठा कर झालिया
ओर छोड दिया सहु भर्म।।

प्रभो! आपने सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप को मुक्ति का मार्ग कहा है। मैं इनके सिवाय और किसी तत्त्व को धर्म नहीं मानता। मैं अर्हत् को देव, निर्ग्रंथ को गुरु और आपके द्वारा प्ररूपित मार्ग को ही धर्म मानता हूं। मेरे लिए और सब भ्रमजाल है। मेरे लिए आपकी आज्ञा ही सर्वोपरि प्रमाण है।

आचार्यश्री भिक्षु एक आत्मार्थी, त्यागी और विरागी व्यक्तित्व थे। उनकी नीति विशुद्ध और सत्यस्थित थी। उन्होंने आचार-विचार की जो रेखाएं खींचीं, वे नीतिमत्ता और जिनवाणी पर आधारित थीं।

आचार्यश्री भिक्षु क्रांतिकारी लौहपुरुष थे। विक्रम संवत 1817,

दो साधु, मुनिश्री थिरपालजी स्वामी और मुनिश्री फतेहचंदजी स्वामी ने निवेदन किया—आप तपस्या के द्वारा अपने शरीर को कृश न करें। तपस्या का आदेश हमें दिराएं, यह हमारा काम है। आपका काम तो जनता को प्रतिबोध देना और उनका पथ-प्रशस्त करना है। आचार्यश्री भिक्षु ने संतों के निवेदन को स्वीकार किया। वे लोगों को समझाने लगे, प्रतिबोध देने लगे। मानो, एक अभियान-सा शुरू हो गया। जहां भी लोगों में शुद्ध जिज्ञासा के भाव नजर आते, एक-एक व्यक्ति को समझाने के लिए वे घंटों-घंटों लगा दिया करते। कभी-कभी तो पूरी रात ही चर्चा में बिता दिया करते। किस व्यक्ति को कैसे समझाना, कौन-सा उपाय काम में लेना, इन सब बातों में वे बड़े दक्ष थे।

चैत्र शुक्ला 9 को उन्होंने अभिनिष्क्रमण कर जीवन की एक नई यात्रा प्रारंभ की। अभिनिष्क्रमण का अर्थ है—बाहर जाना, प्रव्रज्या के लिए गृहत्याग करना, किसी लक्ष्य के समीप जाना। आचार्यश्री भिक्षु के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने दो बार अभिनिष्क्रमण किया। पहली बार उस समय अभिनिष्क्रमण किया, जब गृहत्याग कर दीक्षित हुए और दूसरी बार उन्होंने आत्मकल्याण और जन-कल्याण का पथ प्रशस्त करने के लिए अभिनिष्क्रमण किया।

जीवन की मूलभूत तीन आवश्यकताएं होती हैं—भोजन, वस्त्र और आवास। आचार्यश्री भिक्षु को द्वितीय अभिनिष्क्रमण करते ही विकट कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पांच वर्ष तक उन्हें न पूरा आहार मिला, न वस्त्र और न आवास के लिए स्थान। मुनिश्री हेमराजजी स्वामी को संबोधित करते हुए आचार्यश्री भिक्षु स्वयं बताते हैं—'म्हे उणाने छोड्या जद पांच वर्स तांई तौ पूरौ आहार न मिल्यौ। घी चौपर तो कठै। कपड़ो कदाचित् वासती मिलती ते सवा रुपीया री। तौ भारमलजी स्वामी कहिता—पछेवरी आपरै करौ। जद स्वामीजी कहिता—एक चोलपटौ थारौ करौ, एक म्हारै करौ। आहार-पांणी जांचनै उजाड़ मै सर्व साध परहा जावता। रूंखरा री छायां तौ आहार पांणी मेल नै आतापना लैता, आथण रा पाछा गांम मै आवता। इण रीते कष्ट भोगवता। कर्म काटता। म्हे या न जांणता म्हारौ मारग जमसी, नै म्हांमै यूं दिख्या लेसी नै यूं श्रावक-श्राविका हुसी। जाण्यौ आत्मा रा कारज सारसां, मर पूरा देसां। इम जाणनै तपस्या करता।'

अभिनिष्क्रमण करते ही विरोधों का तूफान इतने वेग से उठा कि आचार्यश्री भिक्षु को प्रतीत होने लगा कि मैं उपलब्ध सत्य का प्रचार-प्रसार नहीं कर पाऊंगा, तब उन्होंने अपने सहयोगी संतों के साथ अपनी संपूर्ण शक्ति को आत्म-साधना में नियोजित कर दिया। तपस्या और आतापना उनकी साधना के मुख्य अंग बन गए। यह क्रम लंबे समय तक चलता रहा।

बुद्धचरित में यह प्रसंग आता है कि गौतम बुद्ध ने साधना के द्वारा सिद्धि प्राप्त कर ली, ध्यानावस्थित होकर जीवन-मरण के कार्य-कारण संबंधों को भलीभांति जान लिया और मुक्ति प्राप्त कर ली। इस मुक्तावस्था में वे सात दिनों तक बैठे रहे। कहा जाता है कि उस समय दो देवता आए और उन्होंने निवेदन किया—'हे भवसागर को पार करने वाले मुनि! आप इस दुखी जगत का उद्धार कीजिए। जैसे धनी धन बांटता है, वैसे ही आप अपने गुण और ज्ञान को बांटिए।'

महात्मा बुद्ध ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर ली। जगत को बोध प्रदान करने की अपनी प्रतिज्ञा का भी उन्हें स्मरण हो आया। वे संसार के अज्ञान रूपी अंधकार को मिटाने के लिए अपने आसन से उठे और काशी की ओर जाने के लिए अग्रसर हो गए।

आचार्यश्री भिक्षु के जीवन में भी ऐसी ही घटना घटी। उन्हें तपस्या, आतापना करते देखकर उन दो देवों की भांति दो साधु, मुनिश्री थिरपालजी स्वामी और मुनिश्री फतेहचंदजी स्वामी ने निवेदन किया—आप तपस्या के द्वारा अपने शरीर को कृश न करें। तपस्या का आदेश हमें दिराएं, यह हमारा काम है। आपका काम तो जनता को प्रतिबोध देना और उनका पथ-प्रशस्त करना है। आचार्यश्री भिक्षु ने संतों के निवेदन को स्वीकार किया। वे लोगों को समझाने लगे, प्रतिबोध देने लगे। मानो, एक अभियान-सा शुरू हो गया। जहां भी लोगों में शुद्ध जिज्ञासा के भाव नजर आते, एक-एक व्यक्ति को समझाने के लिए वे घंटों-घंटों लगा दिया करते। कभी-कभी तो पूरी रात ही चर्चा में बिता दिया करते। किस व्यक्ति को कैसे समझाना, कौन-सा उपाय काम में लेना, इन सब बातों में वे बड़े दक्ष थे।

आचार्यश्री भिक्षु मारवाड़ के एक गांव में पधारे। अनेक लोग संपर्क में आए, किंतु वहां का प्रमुख व्यक्ति कभी नहीं आया। एक दिन मार्ग में वह मिल गया। स्वामीजी ने उसे सत्संग तथा धर्मचर्चा करने के लिए कहा। प्रसंग को टालने के लिए उसने भी कह दिया—किसी दिन अवसर निकाल कर आऊंगा। उसके पश्चात् कई दिन निकल गए, फिर भी वह नहीं आया। एक दिन स्वामीजी फिर मार्ग में मिल गए। इस बार उसे धर्म-चर्चा के लिए कहा गया तो उसने स्पष्ट कह दिया—आना तो चाहता था, पर अवकाश ही नहीं मिला। स्वामीजी ने कहा—प्रातः या सायं कुछ-न-कुछ अवकाश तो मिलता ही होगा? उसने कहा—प्रातः दतौन-कुल्ला करता हूं, बस उसी को आप भले ही अवकाश समझ लें। यह कहकर वह अपनी दूकान की ओर चला गया। वह व्यक्ति मन-ही-मन सोचने लगा कि

इस बार मैंने सदा के लिए बला टाल दी है। अगले दिन प्रातःकाल ज्योंही वह दतौन-कुल्ला करने बैठा तो देखा कि स्वामीजी उसी की ओर आ रहे हैं। वह खड़ा हो गया और कुछ लज्जित-सा होकर बोला—'इस समय पधारने की आपने कैसे कृपा की?' स्वामीजी ने कहा—'कल तुमने यही तो अवकाश का समय बताया था।' उसने कहा—'बस, स्वामीजी! मुझे क्षमा करें। मैं आज अवश्य आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊंगा।' वह व्यक्ति उसी दिन से संपर्क में आने लगा। बातचीत और तत्त्वचर्चा का क्रम प्रारंभ हुआ। कालांतर में वह एक दृढ़ श्रद्धालु श्रावक बन गया। स्वामीजी ने इस प्रकार एक-एक व्यक्ति के लिए न जाने कितना परिश्रम किया था। किसके मन को कैसे अध्यात्म की ओर मोड़ा जा सकता है, वे इसके अद्वितीय मर्मज्ञ थे।

इस प्रकार धीरे-धीरे लोग समझने लगे और उनके सिद्धांतों को स्वीकार करने लगे। जब संगठन में वृद्धि होने लगी, आचार्यश्री भिक्षु ने तत्कालीन साधु-समाज की स्थिति को देखकर यह चिंतन किया कि व्यवस्था और मर्यादा के बिना संघ को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। व्यवस्था को बनाए रखने के लिए विधि-विधान की अपेक्षा रहती है। उसके बिना सामुदायिक जीवन में पग-पग पर खतरा बना रहता है। उन्होंने अपने संघ में कुछ नवीन मर्यादाओं का निर्माण किया। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह थी कि आचार्यश्री भिक्षु ने मात्र मर्यादाओं का निर्माण ही नहीं किया, मर्यादापालक साधु-साध्वियों के मन में मर्यादा के प्रति निष्ठा का निर्माण भी किया। इतना ही नहीं, मर्यादा और अनुशासन के संस्कारों को मज्जा तक पहुंचाने का प्रयास भी किया। उन्होंने मर्यादाएं किसी पर थोपी नहीं। मर्यादाओं को स्वीकार करने के लिए किसी को बाध्य नहीं किया। सबकी स्वीकृति के बाद मर्यादाओं को लागू किया।

आचार्यश्री भिक्षु ने जिस उदार और तटस्थ दृष्टिकोण के साथ मर्यादाओं का निर्माण किया, वह उनकी आत्मार्थिता और दूरदर्शिता का प्रतीक था। जो संविधान चंद साधु-साध्वियों के लिए बनाया गया, वही संविधान वर्तमान में लगभग आठ सौ साधु-साध्वियों, समण-समणियों के लिए सुरक्षाकवच बना हुआ है। उन्होंने संघ के लिए ऐसी लक्ष्मण रेखाएं खींचीं, जिनके भीतर रहने वाला सदस्य स्वस्थ, आश्वस्त और विश्वस्त रह सकता है। जो अभागा उन लक्ष्मण रेखाओं का अतिक्रमण करता है, उसके लिए स्थिति चिंतनीय बन जाती है।

विक्रम संवत 1938 की घटना है। श्रीमद् जयाचार्य (तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य) जयपुर में विराजमान थे। जीवन का अंतिम वर्ष चल रहा था। संघीय व्यवस्था का संचालन मुख्यतया युवाचार्यश्री मघवा करते थे। जयाचार्यश्री का अधिकतम समय स्वाध्याय, ध्यान आदि में ही लगता था। सायंकालीन प्रतिक्रमण प्रारंभ हो गया। युवाचार्यश्री आचार्यवर के पास ही बैठे थे। जुहारजी नामक एक संत शौचार्थ बाहर जंगल में गए हुए थे। वे लौटे, तब तक कुछ अंधेरा हो चुका था। युवाचार्यश्री ने कहा—'इतनी देर कैसे की? सूर्यास्त कब का हो चुका, जल्दी आना चाहिए। भविष्य में ध्यान रखना। आज देरी की, उसके लिए प्रायश्चित्त के रूप में पांच कल्याणक (–) स्वीकार करो।' मुनि जुहारजी ने कहा—'दैहिक आवश्यकता है। देरी हो गई, उसका मैं क्या करूं? मैं प्रायश्चित्त स्वीकार नहीं करूंगा।' युवाचार्यश्री मौन रहे। जयाचार्यश्री ने ध्यान संपन्न कर उस साधु को बुलाया और पूछा—'क्या तुम्हारा यह निर्णय है कि तुम प्रायश्चित्त स्वीकार नहीं करोगे? क्या यह अनुशासन की अवहेलना नहीं है? तुमने अनुशासन का भंग किया है, इसलिए मैं तुम्हारा संघ से संबंध-विच्छेद करता हूं।' जुहारजी ने यह सोचा भी नहीं होगा कि अनुशासन-भंग का यह परिणाम होगा।

वस्तुतः अनुशासन एक लक्ष्मण रेखा है, जो क्रूर वृत्तियों को भीतर प्रविष्ट होने का प्रवेश-पत्र नहीं देती। अनुशासन एक असंदीन द्वीप है, जो अथाह जलराशि में घिरे व्यक्ति को त्राण देता है।

इक्कीसवीं सदी में जीने वाला व्यक्ति यदि वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं तथा स्वेच्छाचारिता और अनुशासनहीनता से मुक्ति पाना चाहता है तो मर्यादा संजीवनी का काम कर सकती है।

क्रांतिकारी आचार्यश्री भिक्षु ने साधना के दीवट पर मर्यादा का जो दीप जलाया, उसके प्रकाश में हर साधक अपना पथ आलोकित कर सकता है। मंजिल तक पहुंचने का ऐसा सद्प्रयास हर किसी की सफलता को सुनिश्चित करता है। ❖

युवाचार्य मनोनयन
24 सितंबर
हर्ष : हर्ष

चुनौतियों में अप्रकंप व्यक्तित्व

साध्वी विश्रुतविभा

एक बार महर्षि धन्वंतरि की पीठ में फोड़ा हो गया। दवा बनाने के लिए जड़ी-बूटियों का अन्वेषण शुरू किया। उपयुक्त जड़ी-बूटी प्राप्त करने के लिए सुदूर अटवियों में भ्रमण करते रहे, जड़ी-बूटियों के गुण-धर्म का विश्लेषण करते रहे। इस विश्लेषण-प्रक्रिया में अनेक बहुमूल्य औषधियों को खोजने में सफल हो गए।

शोधकाल के दौरान एक दिन किसी जड़ी-बूटी ने धन्वंतरि से कहा—'तुम्हारे फोड़े के लिए मेरे रस का उपयोग करो, तुम्हारा घाव भर जाएगा।'

महर्षि ने कहा—'इतने दिन तुम मौन क्यों रही? व्यर्थ में इतना श्रम क्यों करवाया?'

जड़ी-बूटी ने कहा—'यदि मैं तुम्हें अनायास ही प्राप्त हो जाती तो नई औषधियों का शोध कैसे होता?'

पुरुषार्थ और लगन से धन्वंतरि ने उस आयुर्वेद-शास्त्र का प्रतिपादन किया, जो रोगपीड़ित व्यक्तियों के लिए संजीवनी बन गया। यदि वे पुरुषार्थ नहीं करते, उनमें लगन नहीं होती तो विद्या की इस जीवनदाई शाखा का उद्‌भव नहीं होता।

जहां अध्ययन, रुचि, स्वाध्याय, शील और विषय-विश्लेषण की शक्ति ने उनमें 'आई. क्यू.' की चेतना को विशिष्टता प्रदान की है, वहां ध्यान, मौन और अपने भीतर झांकने की वृत्ति ने 'ई. क्यू.' की चेतना को निर्मल और पारदर्शी बनाया है। 'आई. क्यू.' की प्रखरता का एक साक्ष्य है—आगमों का गहरा अध्ययन और उसे युग-भाषा में प्रस्तुत करने का श्लाघ्य प्रयत्न। दूसरी ओर 'ई. क्यू.' की विलक्षणता का साक्ष्य है—प्रबल आत्मविश्वास, विशुद्ध भावधारा और विलक्षण आचारनिष्ठा। 'आई. क्यू.' और 'ई. क्यू.' के इस अद्वितीय संगम ने आपके व्यक्तित्व को अलौकिक आभा से अभिमंडित किया है।

पुरुषार्थ और लगन से व्यक्ति सफलता प्राप्त करता है। जो पुरुषार्थ में विश्वास नहीं करता, जिसमें कार्य की ललक या लगन नहीं होती—वह कभी भी आगे नहीं बढ़ सकता।

युवाचार्यश्री महाश्रमण पुरुषार्थ की ऐसी ही जीवंत प्रतिमा हैं। कार्यनिष्ठा और लगन ने उनके व्यक्तित्व को नए आयाम दिए हैं। किसी भी तथ्य की गहराई में पहुंचना उनका निसर्ग है। इसलिए उपलब्धियों और सफलता के अनुपम मोती उन्हें प्राप्त होते रहे हैं।

भाग्य और पुरुषार्थ—दोनों परस्पर जुड़े हुए हैं। इनके आधार

पर एक चतुर्भंगी का निर्माण किया जा सकता है— 1. कुछ व्यक्ति भाग्यशाली होते हैं। 2. कुछ व्यक्ति पुरुषार्थी होते हैं। 3. कुछ व्यक्ति भाग्यशाली भी नहीं होते और पुरुषार्थी भी नहीं होते। 4. कुछ व्यक्ति भाग्यशाली भी होते हैं और पुरुषार्थी भी।

कुछ व्यक्ति मात्र भाग्य में विश्वास करते हैं और यही चिंतन करते रहते हैं कि जो भाग्य में लिखा है, वह हो जाएगा। अनावश्यक श्रम क्यों किया जाए! कुछ व्यक्ति पुरुषार्थ पर भरोसा करते हैं और वे निरंतर श्रम करते रहते हैं। वे इस बात की परवाह नहीं करते कि भाग्य उनका सहयोग कर रहा है, या नहीं।

युवाचार्यश्री महाश्रमण विकास के शिखर को छू रहे हैं, क्योंकि उनका भाग्य भी प्रखर है और पुरुषार्थ भी प्रखर है। भाग्य और पुरुषार्थ का दुर्लभ योग विलक्षण व्यक्तियों को ही प्राप्त होता है। युवाचार्यश्री महाश्रमण भाग्यशाली इसलिए हैं कि उन्हें तेरापंथ जैसा पवित्र धर्मसंघ मिला। गणाधिपति तुलसी के पवित्र आभावलय में आपकी विकास-यात्रा प्रारंभ हुई और आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने आपकी अर्हताओं को अविचल पहचान दी, और तेरापंथ धर्मसंघ के सर्वोच्च पद पर आपको आसीन किया। आपने भी युवाचार्य पद को प्राप्त कर इसकी गरिमा को उत्तरोत्तर वृद्धिंगत किया है। यह अलौकिक बात है कि पुरुषार्थ, कार्यनिष्ठा और लगन सदैव आपके सहचर रहे हैं। लगता है कि उपनिषद् की यह ऋचा आपके लिए आदर्श बनी हुई है—

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निषद्यमानस्य चरति चरतो भगः।।
चरैवेति चरैवेति।।

अर्थात् जो बैठा रहता है उसका भाग्य बैठा रहता है। जो खड़ा हो जाता है उसका भाग्य खड़ा हो जाता है, जो सो जाता है उसका भाग्य सो जाता है, जो चलता है उसका भाग्य भी चलता रहता है—इसलिए निरंतर चलते रहो, चलते रहो। युवाचार्यश्री महाश्रमणजी इस सूक्त को अनवरत जी रहे हैं। 'चरैवेति चरैवेति' उनका जीवन मंत्र बना हुआ है। अप्रतिम पुरुषार्थ से वे अपने पथ का निर्माण कर रहे हैं। इसलिए भाग्य भी उनके चरणों का अनुगमन कर रहा है। सफलता उनके जीवन की गाथा बन रही है। सफलता को प्रभावित करने वाले तीन मानदंड सूचकांक हैं—1. आई. क्यू.—इंटेलिजेंस क्वोशंट, 2. ई. क्यू.—इमोशनल क्वोशंट, 3. ए. क्यू.—एडवर्सिटी क्वोशंट।

बहुत वर्षों तक वैज्ञानिकों और शिक्षाविदों में यह धारणा बद्धमूल रही कि 'आई. क्यू.' सफलता का पहला घटक है। उस समय यह माना जाता था कि जिसका 'आई. क्यू.' प्रबल होता है—वह सफल होता है, लेकिन आज इस धारणा में परिवर्तन आया है। यह अनुभव किया जा रहा है कि सफलता के लिए 'आई. क्यू.' ही पर्याप्त नहीं है। जिनका 'आई. क्यू.' तेज है, वे अपनी शक्ति का ध्वंसात्मक कार्यों में भी उपयोग कर रहे हैं, अथवा बेरोजगारी ने उनकी जीवन ऊर्जा का क्षरण कर दिया है।

सफलता का दूसरा घटक तत्त्व है—'ई. क्यू.'। कुछ वर्षों पूर्व डेनियल गोलमेन ने एक पुस्तक लिखी—'इमोशनल इंटेलिजेंस।' उसमें उन्होंने सफलता के रहस्य सूत्रों की विवेचना की है। गोलमेन का मत है कि सफलता के लिए 'आई. क्यू.' नहीं 'ई. क्यू.' होना भी जरूरी है। जिन व्यक्तियों का 'ई. क्यू.' अच्छा होता है, वे अपने आवेशों पर नियंत्रण कर लेते हैं और सही समय पर सही निर्णय लेने में भी समर्थ होते हैं। गोलमेन के शोध का निष्कर्ष यह है कि ज्यादा 'आई. क्यू.' व कम 'ई. क्यू.' वाले लोग अपने जीवन में असफल भी होते हैं, जबकि सामान्य 'आई. क्यू.' और अधिक 'ई. क्यू.' वाले लोग निरंतर सफलता का वरण करते चले जाते हैं।

'आई. क्यू.' और 'ई. क्यू.'—दोनों का अद्‌भुत संगम—युवाचार्य महाश्रमण के व्यक्तित्व में देखा जा सकता है। उनका 'आई. क्यू.' जितना प्रखर है, उतना ही प्रबल है 'ई. क्यू.'। जहां अध्ययन, रुचि, स्वाध्याय, शील और विषय-विश्लेषण की शक्ति ने उनमें 'आई. क्यू.' की चेतना को विशिष्टता प्रदान की है, वहां ध्यान, मौन और अपने भीतर झांकने की वृत्ति ने 'ई. क्यू.' की चेतना को निर्मल और पारदर्शी बनाया है। 'आई. क्यू.' की प्रखरता का एक साक्ष्य है—आगमों का गहरा अध्ययन और उसे युग-भाषा में प्रस्तुत करने का श्लाघ्य-प्रयत्न। दूसरी ओर 'ई. क्यू.' की विलक्षणता का साक्ष्य है—प्रबल आत्मविश्वास, विशुद्ध भावधारा और विलक्षण आचारनिष्ठा। 'आई. क्यू.' और 'ई. क्यू.' के इस अद्वितीय संगम ने आपके व्यक्तित्व को अलौकिक आभा से अभिमंडित किया है।

सफलता के लिए तीसरा घटक तत्त्व है—'एडवर्सिटी क्वोशंट'। जिसका 'आई. क्यू.' अच्छा है, 'ई. क्यू.' अच्छा है, उसका 'ए. क्यू.' अच्छा बन जाता है। उसका धैर्य विचलित नहीं होता। डॉ. स्टोल्ट्ज के अनुसार 'ए. क्यू.' के तीन स्तर हैं—1. पहले प्रकार के वे व्यक्ति हैं, जो मुश्किल के समय हार मान लेते हैं। 2. दूसरे प्रकार के वे व्यक्ति हैं, जो आरामदाई जगह मिलने पर मध्यमार्ग में रुक जाते हैं। 3. तीसरे प्रकार के वे व्यक्ति हैं, जो चुनौतियों को स्वीकार करते हैं, बाधाओं को चीरकर आगे बढ़ते हैं और सफलता को प्राप्त करते हैं।

युवाचार्यश्री महाश्रमण 'आई. क्यू.' और 'ई. क्यू.' से ही नहीं 'ए. क्यू.' से भी संपन्न हैं। उनके सामने जब-कभी चुनौतीपूर्ण क्षण आते हैं—उन क्षणों में वे न निराश होते हैं, न संतुलन खोते है, न मध्यवर्ती मार्ग अपनाते हैं, न पीछे हटते हैं, अपितु चुनौतियों का बड़े साहस के साथ मुकाबला करते हैं। आपका संकल्प और पराक्रम चुनौतियों में अप्रकंप बना रहता है। चुनौतियां स्वयं अकिंचित्कर बन जाती हैं और विजय का पथ प्रशस्त हो जाता है।

युवाचार्यश्री महाश्रमण का जीवन पुरुषार्थ की कहानी है। वे किसी भी कार्य के लिए आलस्य नहीं करते। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कोई भी कार्य किसी भी समय करने के लिए निर्देश दें, आप तत्काल उसी कार्य को संपादित करने में अपनी शक्ति का नियोजन कर देते हैं। एक बार सूर्यास्त में थोड़ा समय अवशिष्ट था। एक भाई आचार्यवर के पास आया और प्रार्थना की—'मेरी मां बहुत गंभीर स्थिति में है, अंतिम सांसें गिन रही है, युवाचार्यश्री उन्हें दर्शन दें।' आचार्यश्री ने तुरंत युवाचार्यश्री को याद किया, स्थिति की अवगति दी। युवाचार्यश्री ने आचार्यश्री के इंगित के अनुरूप तत्काल निवेदन किया—'अभी चला जाता हूं।' उनके मन में यह विकल्प भी नहीं उठा कि दिन बहुत थोड़ा है, कल दर्शन दे देंगे। जो काम आज हो सकता है अथवा आज किया जा सकता है—उसे कल पर मत छोड़ो, इस चिंतन को आधार देती है—पुरुषार्थ चेतना।

जब-जब युवाचार्यश्री की दिनचर्या पर दृष्टिपात होता है तो अप्रमाद और पुरुषार्थ का प्रदीप अहर्निश प्रज्वलित दिखाई देता है। प्रातः चार बजे से लेकर रात्रि दस बजे तक पुरुषार्थ की ज्योति आलोक बिखेरती प्रतीत होती है। ब्रह्ममुहूर्त में प्रायः साढ़े तीन अथवा चार बजे जागरण। जप, ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा परामानसिक शक्तियों के जागरण का उपक्रम। तदनंतर अर्हत् वंदना, प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन में संलीन। सूर्योदय के समय गुरु-उपासना का नियमित क्रम। दैनिक कार्यों से निवृत्ति के पश्चात् गमनयोग और प्रतिदिन प्रायः चार-पांच किलोमीटर का पद विहार। युवाचार्यश्री महाश्रमण प्रकृति के खुले परिवेश में भ्रमण करना पसंद करते हैं। यह सुनिश्चित मत है कि प्रदूषणमुक्त स्थान या उपवन में प्रातःकालीन भ्रमण स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। व्यस्त दिनचर्या में भी आप गमनयोग को कभी विस्मृत नहीं करते। कभी-कभी श्रद्धालु जनों की भावना को कृतार्थ करने के लिए भिक्षा के लिए भी पधारते हैं, तो आसन, प्राणायाम और कायोत्सर्ग भी नियमशः करते हैं। तत्पश्चात् प्रातराश, वह भी बहुत स्वल्प, कभी-कभी उपवास भी कर लेते हैं। नित्यक्रम में वीरत्थुई का घोषपूर्वक उच्चारण करते हैं। इसी दौरान व्याख्यान की तैयारी भी करवाते हैं। प्रवचन से संबंधित विषयों का अध्ययन और उनके नोट्स भी लेते हैं। प्रतिदिन लगभग डेढ़-दो घंटे का समय प्रवचन-पांडाल में व्यतीत होता है। आप स्वयं प्रवचन करते हैं और गुरु द्वारा विश्लेषित विषय को अवधानपूर्वक श्रोत्रेंद्रिय का विषय बनाते हैं। प्रवचनोपरांत आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की सन्निधि में संघीय व्यवस्था के संदर्भ में किए जाने वाले चिंतन में आपकी उपस्थिति अनिवार्य होती है। इस समय बहुत बार सामूहिक गोष्ठियां भी होती हैं। उसका 'एजेंडा' भी आप ही प्रस्तुत करते हैं। गोष्ठी के पश्चात् मध्याह्न का आहार ग्रहण करते हैं, फिर आचार्यवर की उपासना में पहुंचते हैं और समाचार-पत्र के नए और प्रमुख समाचार सुनाते हैं। जब तक आचार्य को नींद बाधित नहीं करती, तब तक यह क्रम चलता है। उसके पश्चात् युवाचार्यवर कुछ समय के लिए विश्राम करते हैं। लगभग दो बजे साध्वियों को संस्कृत, व्याकरण का अध्ययन कराते हैं, सृजन एवं लेखन कार्य भी करते हैं। उसके बाद साढ़े चार बजे तक लोगों की सार-संभाल में व्यस्त रहते हैं। स्थानीय लोगों को उपासना का लाभ देते हैं। आगंतुक लोगों की समस्याएं, प्रार्थनाएं सुनते हैं। देश-विदेश से समागत संवादों को पढ़ते हैं और आवश्यक दिशा-निर्देश भी करते हैं।

शेष पृष्ठ 58 पर

मैत्री पर्व क्षमापना
16 सितंबर

पर्युषण : वेरं मज्झं न केण इ

❑

मुनि राकेशकुमार

पर्युषण आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पर्व है। इसकी आराधना और उपासना मानव मात्र के लिए कल्याणकारी है। इसमें किसी प्रकार की सांप्रदायिक दृष्टि नहीं है। पर्युषण पर्व के साथ किसी तीर्थंकर की जन्म या निर्वाण तिथि का कोई संबंध नहीं है। जैन पर्व होने से बहुत-से व्यक्तियों के मन में यह जिज्ञासा रहती है, पर जैन धर्म के सिद्धांतों और आदर्शों में व्यक्तिपूजा के लिए स्थान नहीं है। पर्युषण की पृष्ठभूमि में मानवता, संयम और अनुशासन की प्रतिष्ठा का प्रसंग छिपा हुआ है। भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी या पंचमी का दिवस पर्युषण पर्व का एक मुख्य दिवस है। श्वेतांबर परंपरा में पंचमी से आठ दिवस पूर्व इस पर्व का प्रारंभ होता है। दिगंबर परंपरा में पंचमी से दस लक्षण पर्व के रूप में इसका शुभारंभ होता है।

आज चारों ओर हिंसा, अशांति, संघर्ष और विघटन का हाहाकार सुनाई दे रहा है। जाति, भाषा, पंथ और संप्रदायवाद की दीवारों से मानवता का मंदिर विभक्त और खंडित हो रहा है। स्वार्थ, आग्रह और घृणा के विचारों और संस्कारों से पारिवारिक और सामाजिक जीवन में बिखराव और टकराव के स्वर प्रतिध्वनित हो रहे हैं। वैज्ञानिक साधनों से बाहर की दूरी कम हो रही है, पर भीतर की दूरी बढ़ रही है। इस स्थिति में अहिंसा, शांति और मैत्री के संदेशवाहक पर्युषण पर्व की प्रासंगिकता तथा महत्ता और अधिक बढ़ गई है।

अहिंसा और मैत्री की प्रतिष्ठा संयम के वातावरण में सहजता से संभव है। हिंसा और संघर्ष का मुख्य हेतु असंयम है। छोटी-छोटी वस्तुओं के कारण संबंधों में दरार पैदा हो जाती है। जिनका मन लालसा और तृष्णा से ग्रसित होता है, उनकी स्वार्थ-चेतना प्रबल हो जाती है। तब वे किसी के प्रति मैत्री के संबंध नहीं निभा सकते। दूसरी ओर जिनमें त्याग और संयम की दृष्टि होती है, उनके जीवन में क्षमा और मैत्री का आदर्श भी होता है। पर्युषण पर्व क्षमा और मैत्री की आधार भूमि प्रदान करता है।

पर्युषण शब्द का निर्माण 'परि' और 'उष्ण' के योग से हुआ है। इसका भावार्थ है, आत्मा में निवास करना, बहिर्मुखता से हटकर अंतर्मुखता का विकास करना। आज का मानव दूर से निकट हो रहा है और निकट से दूर हो रहा है। आकाश के ग्रह-नक्षत्रों से वह संपर्क स्थापित कर रहा है, समुद्र की गहराई का अवगाहन कर रहा है, पर अपने आध्यात्मिक अस्तित्व

और स्वरूप से वह दूर और अपरिचित हो रहा है। इस विरोधाभास ने नाना प्रकार की समस्याएं उत्पन्न की हैं। पर्युषण पर्व इस भ्रांति के निराकरण का पर्व है, 'स्व' से 'स्व' के साक्षात्कार का पर्व है।

नौ मनुष्य पदयात्रा कर रहे थे। मार्ग में नदी आ गई। उस पार जाने के लिए वे पानी में कूद पड़े। नदी पार कर वे बाहर आ गए और गिनती की, एक संख्या कम हुई। सभी रोने लगे। सोचा, हमारा एक साथी नदी में ही रह गया है। एक बुद्धिमान व्यक्ति थोड़ी दूरी पर खड़ा था। जब उसने उन्हें रोते हुए देखा तो वह निकट आया। रोने का कारण पूछा। उन्होंने कहा हम नौ साथी थे। हमारा एक साथी नदी में डूब गया है। यह सुनकर वह मनुष्य हंसने लगा। उसने कहा—आप मेरे सामने गिनती करें। जब उन ने गिनती की तो वह समझ गया कि एक कम कैसे है। उसने कहा—आप सब को गिन रहे हैं, पर स्वयं को भूल रहे हैं। सभी दूसरों की ओर उंगली उठाते, पर स्वयं की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। उसके समझाने से उन्हें समाधान मिल गया और प्रसन्नता से वहां से प्रस्थान कर गए।

यह घटना काल्पनिक हो सकती है, पर आज के जनमानस को समझने से यह वास्तविक प्रतीत होती है। नाना प्रकार के भौतिक पदार्थों और मत-मतांतरों के जंगल में सभी स्वयं को भूलते जा रहे हैं। इस संदर्भ में आध्यात्मिक पर्व पर्युषण की महत्ता और अधिक बढ़ जाती है।

ऊंचाई के आकर्षण में गहराई की तथा विस्तार के आकर्षण में आधार की उपेक्षा का परिणाम कभी सुखद नहीं होता। पर्युषण पर्व में इस भूल का शोधन और परिमार्जन होता है। आठ दिन तक आत्म-साक्षात्कार करने के विविध प्रयोग होते हैं।

पदार्थवाद और परिस्थितिवाद की दासता के घने जंगल में जब हमारा मानस भटक जाता है, तब हम अपने स्वत्व से भी अपरिचित हो जाते हैं। पर्युषण पर्व में आत्म-विस्मृति से मुक्ति का अभ्यास किया जाता है, जो हमारी शारीरिक और मानसिक विकृतियों, तनावों और बंधनों पर विजय प्राप्त करने में सहयोगी होता है। परिस्थिति की अपेक्षा मानसिक और आत्मिक शक्ति का महत्त्व अधिक है, सभी धर्मों ने इस विचार पर विशेष बल दिया है। आज की युवापीढ़ी पर्युषण पर्व के संदेश को आत्मसात् कर ले तो नशीली वस्तुओं तथा मनोरंजन के नकली साधनों की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाएगा।

पर्युषण पर्व का आध्यात्मिक दृष्टि के साथ-साथ सामाजिक और पारिवारिक दृष्टि से भी काफी महत्त्व है। मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है। उसमें विचारों और संस्कारों का भेद स्वाभाविक है। जहां सहिष्णुता का अभाव होता है, वहां आग्रह की ग्रंथियां प्रबल होती हैं। दूसरों के विचारों और अधिकारों के प्रति उदार दृष्टिकोण नहीं हो पाता। उस स्थिति में नाना प्रकार के संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। भगवान महावीर ने अनेकांत दर्शन के माध्यम से विरोध में अविरोध की दृष्टि के विकास का मार्गदर्शन किया है।

अहिंसा और मैत्री की प्रतिष्ठा संयम के वातावरण में सहजता से संभव है। हिंसा और संघर्ष का मुख्य हेतु असंयम है। छोटी-छोटी वस्तुओं के कारण संबंधों में दरार पैदा हो जाती है। जिनका मन लालसा और तृष्णा से ग्रसित होता है, उनकी स्वार्थ-चेतना प्रबल हो जाती है। तब वे किसी के प्रति मैत्री के संबंध नहीं निभा सकते। दूसरी ओर जिनमें त्याग और संयम की दृष्टि होती है, उनके जीवन में क्षमा और मैत्री का आदर्श भी होता है। पर्युषण पर्व क्षमा और मैत्री की आधार भूमि प्रदान करता है।

मैत्री के लिए भूतकाल की स्मृतियों का संयम भी जरूरी होता है। जैन परंपरा में प्रतिक्रमण की साधना का विशेष महत्त्व है। किसी भी घटना के साथ राग और द्वेष की गांठ बंध जाती है, उसे खोलकर स्वयं को मुक्त करने का माध्यम प्रतिक्रमण है। हर व्यक्ति के लिए इसका विकास आवश्यक है। इसके बिना शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य की सुरक्षा संभव नहीं है। यदि राग-द्वेष की गांठें अधिक घुल जाती हैं तो उन घटनाओं का स्मरण सतत होता रहता है जो हमारे पारिवारिक और सामाजिक जीवन पर बहुत हानिकर प्रभाव छोड़ती हैं।

कुछ बातों को याद रखना और कुछ को भूलना अच्छा है। गलती होना स्वाभाविक है, पर उसे क्षमा करना भी सीखना चाहिए। किसी एक बात को बिना भावी परिणाम सोचे पकड़कर बैठ जाना सुखी जीवन में बहुत बड़ी बाधा है। पारिवारिक और सामाजिक जीवन में जो भी गांठ लग जाती है, उसे शीघ्र खोलने का प्रयास करना चाहिए। पर्युषण पर्व में अहिंसा और अनाग्रहप्रधान जीवनशैली का विशेष अभ्यास कराया जाता है। अपनी भूलों के लिए सरलता से क्षमा और मैत्री का आदान-प्रदान होता है। यदि वास्तविक रूप में ऐसा हो जाए तो पारिवारिक और सामाजिक मनोमालिन्य धुल जाता है तथा परस्पर शांति व सौहार्द का वातावरण स्थापित हो जाता है। पर्युषण में शांति और सह-

अस्तित्व की साधना की जाती है। इससे ऐसी समस्याओं का समाधान संभव हो जाता है। भगवान महावीर ने कहा है—जो दूसरों के अस्तित्व को अपने अस्तित्व के समान समझता है, वह सच्चा ज्ञानी है। जिस प्रकार किसी का प्राण-वध करना हिंसा है, उसी प्रकार किसी के विचारों और अधिकारों का शोषण करना भी हिंसा है। विश्व की सामाजिक व्यवस्थाओं में समता और समानता के विविध प्रयोग हो रहे हैं, पर आध्यात्मिक आधार के बिना समतावादी जीवनदर्शन का आधार सबल और सफल नहीं हो सकता।

खामेमि सव्व-जीवे सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व भूएसु वेरं मज्झं न केण इ।।

पर्युषण पर्व का यह मुख्य संकल्प सूत्र है। ध्वनि की प्रतिध्वनि की तरह ही विचारों की भी प्रतिध्वनि होती है। हम जैसा विचार करते हैं, वह पुनः हमारी ओर लौटता भी है। यदि हम अपना जीवनपथ शांति और मैत्री के फूलों से सजाना चाहते हैं, तो हमें सबके प्रति मंगल भावना करनी चाहिए।

मनुष्य भूलों का पुतला है। पर्युषण पर्व में वर्षभर की त्रुटियों का परिमार्जन और परिशोधन किया जाता है। यदि किसी के साथ वर्षभर में कटु व्यवहार हुआ हो तो सरलता से क्षमायाचना की जाती है। इस पर्व के प्रभाव से मानसिक कलुषता और मलिनता का भाव धुल सकता है। जीवन की उलझी हुई गांठें सुलझ सकती हैं। इस अवसर पर शुद्ध मन से क्षमायाचना करने से अन्य तपस्याएं और धार्मिक क्रियाएं भी अपना अनुकूल प्रभाव छोड़ती हैं। ❖

रचनाकारों से

जैन भारती में नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के विचार-प्रधान व विश्लेषणात्मक लेखों और मौलिक कहानियों-कविताओं का स्वागत है, प्रकाशित-प्रसारित रचनाओं का उपयोग करना संभव नहीं होगा

अपनी रचनाएं कागज के एक तरफ साफ-साफ टाइप की हुई भेजें
हाथ से लिखी हुई रचनाएं भी कागज के एक ओर ही लिखी हों

लिखावट साफ-सुथरी, बिना काट-छांट के होनी चाहिए
कागज के एक ओर पर्याप्त हाशिया अवश्य छोड़ें

जीवन परिचय, व्यक्तित्व व कृतित्व पर लिखे गए लेख सीधे नहीं भेजें
ऐसे लेख हमारे मांगने पर ही लिखें व भेजें तो बेहतर होगा

समसामयिक विषयों पर विचारात्मक टिप्पणियों का भी हम स्वागत करेंगे
ऐसे लेख भी नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के हों और विश्लेषणात्मक हों तो बेहतर होगा

महिलाओं, किशोरों और बाल-मन पर
आधारित रचनाओं का हम स्वागत करेंगे

आप चाहें तो कहानी-कविता
भी भेज सकते हैं

अप्रकाशित रचनाएं लौटाना अथवा इस बारे में
पत्र-व्यवहार करना संभव नहीं होगा

बेहतर हो, भेजी गई रचना की एक प्रति
रचनाकार पहले से ही अपने पास रखें

कहानी

किशोर मन

ममता अग्रवाल

'उठो भी दीदी। ज्यादा दूर दूर नहीं, बस 'रिज' से वापस आ जाएंगे।'

मधु ने रजाई-चादर सब फेंक मुझे जैसे ढूंढ़ निकाला। बहुत हीले-हवाले किए, कोई न चला। ज्यादा सुस्ती की तो मधु ने मुंह फुला लिया—'क्या दीदी! गिने-चुने दस तो दिन बचे हैं, फिर तो वही लंगड़ी भिन्न करते-करते लंगड़े हो जाना है।'

अब ऐसी लाड़-भरी जिद भला कोई टाल सकता है? रोज यह लड़की ऐसे ही करती है। चाचीजी ने नवंबर में चिट्ठी लिखी—'दीवाली बाद मधु को भेज रही हूं। जरा अपने पास रख कर कुछ सिखा देना। बड़ी कमजोर है वह पढ़ाई में।'

पर, मधु ने स्टेशन पर उतरते ही लंबी-चौड़ी फेहरिस्त बताई—'दीदी! हमें कनाट प्लेस देखना है, निम्मा ने बताया कि बंगाली मार्केट की चाट अच्छी होती है और दीदी वह मुगल गार्डन कहां है? अरे, हमारी सहेली का भाई बड़ी शान मारता है कि वह 'अशोका' में मोमबत्ती की रोशनी में खाना खा कर आया था। यह अशोका क्या हुआ दीदी, 'अशोक' तो कुछ हुआ भी।'

मैंने उसे चक्रवर्ती गणित में से पांच सवाल हल करने के लिए दिए। शाम को मैं लौटी तो मधु ने ठीक-ठीक हल कर रखे थे। 'ए रेनी डे' पर निबंध लिखने को दिया, बहुत बढ़िया लिख कर दिया। दसवीं में पढ़ने वाली लड़की 'ड्रिजिल', 'इमेजिनेशन', 'रेप्चर' आदि शब्दों का प्रयोग कर ले और वर्ड्सवर्थ के उद्धरण से निबंध समाप्त करे तो यह तारीफ की बात ही है। हमारे यहां कहने को कालेज की लड़कियां हैं, पर ऐसी-ऐसी मूर्खता के नमूने देती हैं कि मन होता है कि इनसे पीछा छुड़ाने के लिए कुछ कर लिया जाए। सामान्य ज्ञान की परीक्षा में पूछा गया कि भारत का राष्ट्रीय पक्षी कौन है? जवाब मिला—गाय। पूछा बी.सी. का मतलब, कहा गया—बाटा कंपनी।

मतलब यह कि चाचीजी ने ट्रंक के एक कोने में 'चक्रवर्ती गणित', 'प्राचीन भारत का इतिहास' और 'अर्थशास्त्र के मूल सिद्धांत' सजा कर रखे और दूसरे कोने में मधु ने दर्जन भर कसी-फंसी कमीज-सलवारें। पहले दिन तो मैंने कड़ा होना ठीक नहीं समझा। सोचा—'बच्ची है, थक गई होगी। एक दिन आराम कर लेने दो।' शाम को जनपथ पर घुमाया, 'लेगुना' में 'हाट-डाग' खिलाया और स्कूटर में वापस लाई।

दूसरे दिन कालेज से छुट्टी के बाद घंटे-दो घंटे आराम करने के बाद मैंने पूछा—'हां, तो मधु, तुम्हारा कौन-सा विषय कमजोर है?'

मधु बड़े बड़प्पन से बोली—'अरे दीदी, पास तो मैं सब में हो जाती हूं। मां बेकार ही पीछे पड़ी रहती हैं—पहला नंबर ला। अब आप ही सोचिए कि अगर कोई हर समय डंडा लेकर पीछे पड़ा रहे, तो अच्छों-अच्छों का दिमाग फेल हो जाए। सुबह से मैं 'सिंधु घाटी-सभ्यता' रट रही हूं, अब अगर आप डपट कर पूछें, कहें कि मधु, शाम तक बैठकर सारा 'गुप्त-वंश' पढ़ डाल, तो अक्ल काम करेगी?'

मैंने देखा कि वाकई उसके हाथ में बड़ी मोटी किताब थी। बात करते समय उसके गाल चमकने लगते थे और होंठ नमी पाकर और भी गुलाबी हो उठते थे। मुझे खूब-सा लाड़ उमड़ आया और उसे मारिसनगर के चौराहे से 'कैरीहोम' की आइसक्रीम खिला लाई।

चाचीजी के घर में सब से बड़ी संतान मधु थी। इस समय वह दसवीं में थी। चाचीजी का कहना था कि पिछले साल भी वह उसी क्लास में थी और आगे भी सरकने की उसे कोई जल्दी न थी। उन लोगों की समझ में नहीं आता था कि घर का काम वह छूती नहीं, छोटे भाई-बहिनों को देखती नहीं और मां-बाप से अलग रहती नहीं, फिर भी वह पास क्यों नहीं होती? चिट्ठियों में वे लोग लिखा करते थे—'तुम तो पढ़ाती हो, हर किस्म के शैतान को इनसान बनाना पड़ता होगा। तुम्हारे पास यह टेढ़ा सांचा भेज रहे हैं। देखना, सुधर सकेगा?'

मुझे लगा कि मधु तो बहुत सीधी है। चाचीजी ने देखे नहीं हैं टेढ़े सांचे! कालेज में लड़कियां फर्श पर जूते घिसती हैं और डेस्क के अंदर रख कर सैंडविच चबाती हैं। कैफे में ढूंढ़ो तो सिनेमा में मिलती हैं। मेरे 'विजिटर्स' को देखते ही मधु तो बेडरूम में दौड़ जाती है। आईने में मुंह देखने तक की अक्ल नहीं आई है, अभी उसे। शाम तक बाल बिखेरे पड़ी रहती है।

मैंने उसे चक्रवर्ती गणित में से पांच सवाल हल करने के लिए दिए। शाम को मैं लौटी तो मधु ने ठीक-ठीक हल कर रखे थे। 'ए रेनी डे' पर निबंध लिखने को दिया, बहुत बढ़िया लिख कर दिया। दसवीं में पढ़ने वाली लड़की 'ड्रिजिल', 'इमेजिनेशन', 'रेप्चर' आदि शब्दों का प्रयोग कर ले और वर्ड्सवर्थ के उद्धरण से निबंध समाप्त करे तो यह तारीफ की बात ही है। हमारे यहां कहने को कालेज की लड़कियां हैं, पर ऐसी-ऐसी मूर्खता के नमूने देती हैं कि मन होता है कि इनसे पीछा छुड़ाने के लिए कुछ कर लिया जाए। सामान्य ज्ञान की परीक्षा में पूछा गया कि भारत का राष्ट्रीय पक्षी कौन है? जवाब मिला—गाय। पूछा बी.सी. का मतलब, कहा गया—बाटा कंपनी। और तो और, उस दिन क्लास में पूछा—'फाल फ्लैट' का अर्थ, तो बड़े सकुचाते हुए एक लड़की ने कहा—जी, प्यार में पड़ना। ऐसे कूड़ा-करकट में मधु मुझे हीरा लगी।

मैंने पूछा—'क्यों मधु, कानपुर में पढ़ाई क्या बहुत मुश्किल होती है?' मधु ने बड़े आत्मविश्वास से नकार दिया।

मैंने पूछा—'तूने किसी टीचर को तो खफा नहीं कर दिया?'

होंठों पर सारा रस लाकर बोली—'हाय! हमारी 'मिस' तो हम पर जान देती हैं। दीदी, हमारी मिस की आंखें ऐसी हैं कि उनमें नाव तैरा लो। एक बार देख लो तो गश खाकर गिर पड़ो। हाय! हरे रंग में तो वह ऐसी लगती हैं जैसे कचिया खीरा।'

पता नहीं क्यों मैं मधु को डांट नहीं पाती। ऐसी दुलारी लड़की को मोरपंख भी नहीं छुआ सकता कोई। मैं अगर कहूं—'मधु, जरा इस साड़ी पर प्रेस कर दे।' तो सारी अलमारी खोल कर सहेज देगी। मैं यदि कहूं—'मेरे सिर में दर्द है।' तो मधु की हथेली मेरे माथे के अलावा और कुछ जानेगी ही नहीं।

मैं ट्यूटोरियल कापियां जांच रही थी। मधु पास बैठी थी।

—'हाय कितनी गंदी राइटिंग है....दीदी! देखो 'डेफिनिट' की स्पेलिंग....अरे, इसने 'ही' के साथ 'डोंट' लिखा है।' लगातार मधु की 'रनिंग कमेंट्री' चल रही थी।

आज मुझे बहुत काम था। लगातार लेक्चर थे, फिर ट्यूटोरियल, उसके बाद मीटिंग और फिर सेमिनार। ये कापियां कल वाले ग्रुप को लौटानी थीं। अकारण मैं मधु पर खीझ गई—'तुझे कोई जरूरत नहीं पंचायत करने की। इतनी तेज है तो पास क्यों नहीं होती इम्तहान में।'

मधु ने चोट खाए भाव से मुझे देखा और मुंह लटका लिया।—'सारी दीदी,'—उसने कहा और उठ कर चली गई।

शेष पृष्ठ 58 पर

अशोक अनुराग की कविताएं

•

आनंद-पथ

जब तक नहीं जानता था प्रभु!

याद नहीं आई तुम्हारी
दुख के सिवा कभी
पर अब है कि
चाह कर भी याद नहीं कर सकता
दुख में कभी

तमाम भागमपेल में
साक्षी-भाव रहता है
और पथ में कांटों के समय
मेरा ध्यान सिर्फ कर्म पर होता है

दुख जीवन का धर्म है
झेल जाता हूं आनंद से
नियति मान कर
तब देखता हूं वह कहीं नहीं
और
सुख को तुम्हारा प्रसाद मान कर
निस्संग हो जाता हूं
साक्षी-भाव में स्थित
जहां वो आनंद हो जाता है।

•

एकाकी पथ

प्रभु! एक दुखद स्वप्न
मगर सच
संकरा-सा पथ
जिस पर दो नहीं चल सकते
तब मुझे
तुम और ध्यान में से
किसी एक को चुनने के लिए कहा गया

असमंजस्थ के धुंधलके में क्षण-भर
फिर
मैं ध्यान को चुन लेता हूं।

•

मेरे पंख

जीवन जितना मुश्किल हुआ
उतनी ही
अधिक चेष्टा हुई
जानने की उसे

जानने में
एक चक्र आया है
चक्र में होते हुए
उससे बाहर रहना है

नश्वरता का बोध
अब मेरे पंख।

•

साक्षी

एक विधि की
अंगुली पकड़ कर
पहुंचता हूं

कुंडलिनी चक्र तक

जहां सब
शांत
मौन।

पर यहां शांति का भोक्ता नहीं
द्रष्टा होना है

नहीं फिर—
ध्यान से बाहर
वही सब
अशांत।

तब
शांति
अशांति, दोनों में साक्षी रहे।

•

रोशनी का मार्ग

प्रभु! तुमने सूरज दिया है
देखने के लिए
सब
तब मैं क्यों
किसी धर्म,
धर्मशास्ता की ओर देखूं?

जबकि
तुमने मार्ग नहीं
रोशनी दी है
दिया है सूरज को जन्म
तब क्यों
बने-बनाए रास्तों पर
लकड़ी की टेक किए चलूं?

सूरज से अधिक विश्वास
किसी किताब
किसी धर्म पर?

मेरे इस सफर में
रोशनी का होना काफी है।

❖❖

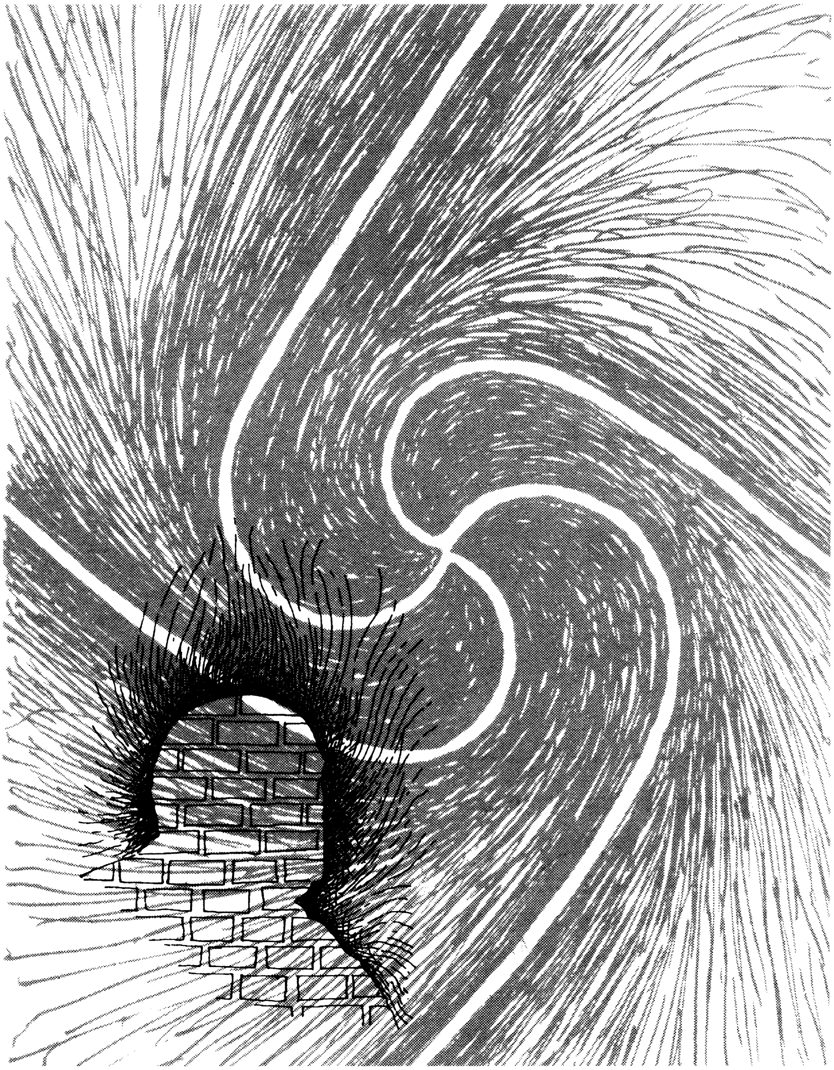

शीलन

हमारा ज्ञान भी हमारा अकेले का नहीं होता; वह अनेक की कमाई होता है, हमारा भी कुछ परिश्रम होता है। ज्ञान सामुदायिक है, यश भी सामुदायिक, सांघिक होगा। हम अकेले समग्र क्षेत्र को व्याप्त नहीं कर सकते। समाज हमें ऊंचा उठाता है, समाज के कंधों पर बैठकर हम आगे का देखते हैं, आगे बढ़ते हैं, सफल होते हैं, प्रकाश में आते हैं, चमकते हैं। मंदिर का कलश दूर से चमकता है, किंतु वे नींव के अदृश्य, अभंग, मजबूत पत्थर! उन्हीं के आधार पर वह कलश स्थित है। जो आज विजयी दिखाई दे रहा है, उसकी विजय अनेक के त्याग और सफलता का समवेत परिणाम है। इसी कारण एक का गौरव सबका गौरव है।

—भगिनी निवेदिता

श्रीमज्जयाचार्य निर्वाण दिवस
8 सितंबर
विशेष

मंत्रद्रष्टा जयाचार्य और नमस्कार महामंत्र

❑

साध्वी पुण्ययशा

जैन परंपरा में अनेक महान और प्रभावक आचार्य हुए हैं—आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य भद्रबाहु, आचार्य हरिभद्र, आचार्य उमास्वाति आदि ने अपने अप्रतिम ज्ञान, अनूठी प्रतिभा एवं युगप्रधान व्यक्तित्व से जैन धर्म और जैन संस्कृति को नई ऊंचाइयां दीं। प्रभावक आचार्यों की इसी शृंखला में विक्रम संवत 1817 में आचार्य भिक्षु ने एक नई धर्मक्रांति का सूत्रपात किया और तेरापंथ का उद्‌भव हुआ। तेरापंथ के ही चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य (आचार्यश्री जीतमलजी) उन्नीसवीं शताब्दी के प्रभास्वर आचार्यों की परंपरा में एक महान आचार्य हुए। उन्होंने आचार्य भिक्षु की परंपरा को संवारा, उसका संवर्धन किया और संघ को सुदृढ़ बनाया। उनके जीवन का साधना पक्ष अति सबल था। वे प्रतिदिन प्रायः 5000 गाथाओं का स्वाध्याय करते थे। उन्होंने जैन श्रुत की विलक्षण उपासना की एवं आगम-परक ग्रंथों की रचना कर जैन ज्ञान-कोष को साहित्य संपदा से भरा।

जैन साधना-पद्धति में आराधना और आराधक, दो शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इनका संबंध वर्तमान और आगामी, दोनों जन्मों के साथ संपृक्त है। जो मनुष्य वर्तमान जीवन में ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सम्यक् आराधना करता है, वह आराधक होकर मरता है और अगले जीवन में पूर्वजीवन से अधिक विकास करता है। जयाचार्यश्री ने पंच-परमेष्ठी नमस्कार द्वार में इस तथ्य का सुंदर निर्देश दिया है कि मरणासन्न व्यक्ति यदि मात्र नवकार के सहारे शुभ गति को प्राप्त कर लेता है तो उस व्यक्ति का क्या कहना, जो सम्यक्त्व और चारित्र गुण सहित महामंत्र की आराधना करता है।

उच्चकोटि के भाष्यकार

श्रीमज्जयाचार्य उच्चकोटि के भाष्यकार थे। आचार्य भिक्षु की प्रत्येक रचना का उन्होंने भाष्य कर दिया। वे महान अध्यात्मयोगी, विश्रुत इतिहासज्ञ, विलक्षण साहित्य-स्रष्टा, सहज प्रतिभासंपन्न कवि थे। उनकी कृतियों का सौष्ठव, गांभीर्य, संगीतमयता, सभी मनोमुग्धकारी थे। इतिहास के संक्रांतिकाल में आप जैसे उद्‌भट विद्वान, कवि, लेखक व युगप्रधान आचार्य को पाकर जैन संस्कृति पुनः धन्य बनी थी। जैन समाज को जयाचार्यश्री की सबसे महत्त्वपूर्ण देन है—उनका विशाल राजस्थानी साहित्य। आगम टीकाकारों में राजस्थानी भाषा में जयाचार्यश्री पद्यबद्ध रचना करने वाले प्रथम टीकाकार थे। भगवती, पन्नवणा, ज्ञातासूत्र, उत्तराध्ययन, प्रथम श्रुत

स्कंध आदि आगमों पर उन्होंने जोड़ (टीका) रची। वे एक दिन में तीन सौ पद्य बना लिया करते थे। यह उनकी मनीषा एवं प्रज्ञा की पारदर्शिता थी। उनके द्वारा विरचित आगम भाष्य, तत्त्वदर्शन, आख्यान, जीवनियां, स्तुति काव्य, संस्मरण, मर्यादा, साधना, व्याकरण, उपदेश आदि विविध वर्णी रचनाओं का आकलन करें तो वे साढ़े तीन लाख (3,50,000 लाख) पद्य प्रमाण होते हैं, जो अपने-आप में एक कीर्तिमान है।

राजस्थानी साहित्य के अधिकारी विद्वान प्रोफेसर नरोत्तमदास स्वामी ने यह घोषित किया था कि जयाचार्य रचित भगवती की जोड़ राजस्थानी का वृहदतम ग्रंथ है। इसका ग्रंथमान 60906 पद्य प्रमाण है। दूसरी ओर शासन-गौरव मुनि बुद्धमलजी ने अपने शोध के आधार पर यह प्रमाणित किया कि उपदेश रत्न कथा-कोष भगवती की जोड़ से भी अधिक वृहदतम ग्रंथ है। इसका ग्रंथमान 66566 पद्य प्रमाण है, यह महत्त्वपूर्ण बात है।[1]

तात्त्विक साहित्य के क्षेत्र में भ्रम विध्वंसन, झीणीचर्चा, प्रश्नोत्तर तत्त्वबोध जैसे अनेक पांडित्यपूर्ण ग्रंथ आज भी अपना वरेण्य स्थान रखते हैं।

मंत्रद्रष्टा-मंत्रस्रष्टा आचार्य

पुष्करावर्तक मेघ की भांति उनकी प्रज्ञा ने अंतर्दृष्टि के प्रयोग किए। निःसंदेह वे एक मंत्रद्रष्टा और मंत्रस्रष्टा आचार्य थे। उन्होंने चौबीसी की उन्नीसवीं गीतिका के छठे पद्य में लिखा है—मानसिक, वाचिक और कायिक स्थिरता साधकर एकत्व की अनुभूति के साथ तीर्थंकरों की स्तुति, स्मृति या नाम मंत्र का जप करने से अनिष्ट/अमंगल नष्ट होते हैं। आंतरिक संताप/तनाव समाप्त होते हैं। वे 'भिक्षु' के नाम को मंत्राक्षर मानते थे। जिसमें विघ्न-हरण एवं मंगलकरण की अपूर्व सामर्थ्य है। जप का सामर्थ्य उनकी बड़ी चौबीसी 11/22 में निम्न प्रकार अभिव्यक्त हुआ है—

अहोनिश ध्याऊं आपनै गुरजी जेम गगन्न हो।
कैतो जाणै केवली तूंहीज मुझ धन तन्न हो।।

विघ्नहरण की गीतिका उनकी एक चामत्कारिक रचना मानी जाती है। उसके संबंध में स्वयं जयाचार्यश्री ने लिखा है—'यह विघ्नहरण की गीतिका 'चंद्र प्रज्ञप्ति' की दूसरी गाथा जैसी है। यह अधिष्ठायक शक्ति से अधिष्ठित है।' इसी प्रकार 'मुणिन्द मोरा', 'भिक्षु म्हारै प्रकट्याजी भरत क्षेत्र में' आप द्वारा विरचित चामत्कारिक गीतिकाएं हैं। महामंत्र से निष्पन्न 'अ.सि.आ.उ.सा.' मंत्र उनका सिद्धमंत्र था। इसकी पुष्टि जिन-शासन के बारे में उनके द्वारा विरचित दो गीतिकाओं के माध्यम से मिलती है। इन गीतिकाओं का प्राणतत्त्व है—'अ.सि.आ.उ.सा.' मंत्र और शासन-देवी। इन गीतों का पारायण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह मंत्र उनका सिद्ध मंत्र था। इस मंत्र के माध्यम से उन्हें शासन-देवी का साक्षात्कार होता था। इस मंत्र की मंत्र-सिद्धि की अभिव्यक्ति और साक्षात्कार के लिए दोनों गीतों की निम्न पंक्तियां पुष्ट प्रमाण हैं—

अ सि आ उ सा भक्त ते, इंद्रादिक हरसंत।
वचन शूर शासन सुरी, परतख ही परखंत।।
(ढाल 1/24)[2]

शासण स्हाज करै निरवद सुरी, अ सि आ उ सा प्रणमै परखी।।
(ढाल 2/4)

रूप अनूंपम अधिक विराजै, रत्न तिलक हद छिव तन की।।
(ढाल 2/5)

कानां कुण्डल हार हिये, नकवेसर मुख चंद्रानन की।।
(ढाल 2/6)

रूड़ा बहिरखा कडि कंदोरो, पेखत तप्त मिटे तन की।।
(ढाल 2/7)

शासन संत सत्यां स्यूं प्रीति, भक्ति करै हद तन मन की।।
(ढाल 2/8)

पाछल भव तप तप्यो विकट वर, ऋद्धि-सिद्धि पामी अधिकी।।
(ढाल 2/9)[3]

इसी तथ्य की पुष्टि जयाचार्यश्री की 'विघ्नहरण' की गीतिका से भी होती है—

गुण ठाणे चोथे गुणी, समण सत्यां हितकारी हो।
अ.सि.आ.उ.सा. नै सदा, प्रणमै बारम्बारी हो।।
तास विचारणा भारी हो, भजो मुनि गुणा रा भंडारी हो।।[4]
(विघ्नहरण गा./23)

मुनि श्रमणसागर ने जयाचार्य के एक रहस्यमय मंत्र का उद्घाटन करते हुए लिखा है—जयाचार्यश्री के दैनिक कार्यों में उठते-उठते सबसे पहला प्रयोग इस प्रकार का होता, जो मुनि फोजीलाट के द्वारा श्रुत है—

ॐ णमो अरहंताणं, बुद्धाणं बोहियाणं स्वाहा।

प्रातःकाल कौआ बोलने से पहले नींद खुलते ही

बिना किसी का मुंह देखे सात बार मंत्र-पाठ से हाथ अभिमंत्रित कर मुंह पर फेरें। जो स्वर चलता हो वह हाथ ऊपर रहे और आवर्त का घुमाव भी उस चालू नासिका स्वर की ओर हो। बिस्तर से बाहर धरती पर भी वह पांव पहले आए जिधर का स्वर चलता हो। यह एक सानुभूत सिद्ध विधि है। इससे विजय तथा आकर्षण शक्ति बढ़ती है। आभामंडल उद्दीप्त होता है। तैजस शरीर में सक्रियता आती है।[5]

दिव्य आत्माओं से संपर्क

जयाचार्यश्री के जीवन की अनेक घटनाएं ऐसी हैं, जिनसे प्रमाणित होता है कि उनका अनेक दिव्य आत्माओं से संपर्क था। एक स्वप्न-विवरण के अंत में वे लिखते हैं कि मैंने वही बात लिखी है जो ब्रह्मेंद्र ने लिखाई है। जयाचार्यश्री ने स्वामी भीखणजी की स्तुति में लिखी अनेक गीतिकाओं में उन्हें 'ब्रह्मेंद्र' कहा है। संभव है स्वप्न के माध्यम से स्वामीजी का उनसे संपर्क रहा हो। आचार्यश्री भारमलजी के लिए अच्युत बारहवें देवलोक के देव होने का तथा मुनि खेतसीजी के लिए सहस्रार अष्टम देवलोक में देव होने का उल्लेख भी जयाचार्यश्री की गीतिकाओं में उपलब्ध है। इनके साथ भी जयाचार्यश्री के संपर्क की संभावना की जा सकती है। गीतिकाओं में किए गए नामोल्लेखों के आधार का उन्होंने कहीं कोई स्पष्टीकरण नहीं किया है। संभव है, उनके अपने ही रहस्यमय संपर्क सूत्र आधार रहे हैं।

उक्त महापुरुषों के अतिरिक्त अनेक दिव्य आत्माओं से भी उनका संपर्क रहा प्रतीत होता है। उन्होंने दवदन्ती, जयवन्ती तथा इंद्राणी आदि देवियों का नामोल्लेख करते हुए कहा है—ये सम्यक्त्वी हैं, साधु-साध्वियों के लिए हितैषी हैं तथा समय-समय पर सहायता करने वाली हैं।[6]

जयाचार्यश्री के साहित्य में महामंत्र का स्वरूप

जयाचार्यश्री के जीवन का हर पहलू दिव्यता एवं भव्यता से अनुप्राणित था। उनकी संत-चेतना ने प्रकृति, पर्यावरण, परिस्थिति, परिवेश, परंपरा और प्राणी की निजी समस्याओं को प्रज्ञा की आंख से देखा, कारण तथा मीमांसा की। उनकी रचनाओं में तभी स्व-संबोध और स्व-निरीक्षण का पक्ष अधिक उजागर हुआ है।

आराधना जयाचार्यश्री की अत्यंत हृदयस्पर्शी और प्रबोधनकारी रचना है। सत्य तो यह है कि उनका समस्त काव्य आत्माराधना का ही काव्य है। प्रस्तुत कृति की रचना उन्होंने बीदासर में एक दिन में ही की थी, जिसमें दस द्वार हैं। प्रत्येक द्वार का एक-एक संगीतमय गीत है। इन दस द्वारों को आध्यात्मिक चिकित्सा पद्धति के दस सूत्र कहा जा सकता है।

कुछ सूत्र मानसिक चिकित्सा के लिए भी उपयोगी हैं। उपरोक्त दस द्वारों में पांचवां चतुःशरण प्रतिपत्ति द्वार, नौवां अनशन द्वार एवं दसवां पंच-परमेष्ठी नमस्कार द्वार—इन तीनों का संबंध नमस्कार महामंत्र की आराधना से जुड़ा हुआ है। पांचवें चतुःशरण द्वार में अर्हत्, सिद्ध, केवलीभाषित धर्म की शरण स्वीकार करने का प्रयोजन और अर्थगांभीर्य बहुत ही सरस और रोचक शैली में प्रस्तुत करना उनके समर्पण और पावन विद्वत्ता का प्रतीक है। यथा—

अंतरंग अरि जीपवै करी अरिहंत कहियै तास हो।।
अ-रहंता अ-रहंता रैस छिपी नहीं।।
पूजण जोग त्रिण जगत ने, वारु अर्हंत्-कहियै विमास हो।।
मुझ शरणों मुझ शरणों, थावो ते अर्हंत् नो।।4।।

दग्ध बीज जिम तरु तणा, अंकुर प्रकट न होय हो।।
तिम स्वामी तिम स्वामी, कर्मबीज दाझवे।।
भव अंकुर प्रकट हुवै नहीं, तिण सूं अरुहंत कहियै सोय हो।।
मुझ शरणों मुझ शरणों, थावो ते अरुहंत नौं।।
शिव वरणो भव तरण शरण भगवंत नौं।।3।।

नवम् अनशन द्वार में उन्होंने अनशन की विधि का उल्लेख करते हुए अनशन से पूर्व सर्वप्रथम सिद्ध भगवंत को, तत्पश्चात् अरिहंत भगवान को और उसके बाद आचार्यों को नमस्कार करने का संकेत करते हुए लिखा है—

प्रथम णमोत्थुणं गुणै, सिद्ध भणी सुखकार।
द्वितिय णमोत्थुणं बली, अरिहंत नै धर प्यार।।3।।
धरमाचारज नै करै, निमल चित्त नमस्कार।
त्याग करै त्रिहुं आ'र ना, जावजीव लग सार।।4।।
धन धन धन धन महामुनि।।

दसम पंच-परमेष्ठी नमस्कार द्वार में जयाचार्यश्री द्वारा उल्लेखित पंक्ति—'नमुक्कार परमेष्ठी पंच, जपतां जय जयकार'—उनकी अगाध श्रद्धा, समर्पण व विजय का प्रतीक है। इस द्वार में छिपे गूढ़ रहस्यों के प्रकटीकरण

के साथ-साथ चामत्कारिक घटनाओं का भी उल्लेख मिलता है। जो निम्न प्रकार से निर्दिष्ट हैं—

1. सुरपद की प्राप्ति : 'मन की दुर्बलता से नाना प्रकार का पाप करने वाले व्यक्ति मृत्यु का अवसर आने पर भी नमस्कार महामंत्र के जप से पराक्रमी या अभय बन जाता है। जिसके कारण परभव में श्रेष्ठ संपत्ति मिलती है और मनवांछित सुख देने वाला फल मिलता है। यह जानकर नमस्कार महामंत्र का जप करें।'[7]

जैन दर्शनानुसार प्राणी अपने कृत कर्मों के कारण चार गति एवं चौरासी लाख जीवयोनि में परिभ्रमण करता है। जैन सिद्धांतानुसार सामान्यतः अपनी आयु के तीसरे भाग में परभव के आयुष्य का बंध होता है। यदि तीसरे भाग में आयुष्य का बंध नहीं हुआ है तो उसके तीसरे भाग में—ऐसे तीसरे भाग करते रहें, अन्यथा मृत्यु के अंतर्मुहूर्त (दो समय से लेकर एक समय कम 48 मिनट तक का कालमान) पहले तो अवश्यमेव परभव के आयुष्य का बंध होता है। यदि पहले आयुष्य का बंध नहीं हुआ है तो मरणासन्न व्यक्ति महामंत्र के स्मरण से शुभ गति के आयुष्य का बंध कर लेता है। इसी तथ्य की पुष्टि में जयाचार्यश्री की निम्न पंक्तियां प्रेरणास्रोत हैं—

पंच परमेष्ठि प्रते समरी, तिको भील तणो भव दूर करी।
ओ तो पंचम कल्पे अवतारं, इम जाण जपो श्री नवकारं।। 10/5
ते भील नी रत्नवती नारी, पंचपरमेष्ठि तिमज हियेधारी।
आ पिण पंचम कल्पे अवतारं, इम जाण जपो श्री नवकारं।। 10/6
नवकार मंत्र सेठ संभलायो, सुण जाप जप्यो तिण सुखदायो।
लह्यो म्हावत सुर नौ अवतारं, इम जाण जपो श्री नवकारं।। 10/9

अर्थात् भील और भील की रत्नवती नारी पंच-परमेष्ठी के स्मरण से भील भव को छोड़कर पंचम स्वर्ग में देव बने। महावत अंतिम समय में अपने सेठ के द्वारा नमस्कार महामंत्र सुनकर स्वर्गलोक में देव बना। इस संबंध में धरणेंद्र और पद्मावती का उदाहरण विश्रुत है। राजकुमार पारस ने कमठ तापस द्वारा यज्ञ मंडप में जल रहे नाग-नागिन के जोड़ों को नमस्कार महामंत्र सुनाया। महामंत्र के प्रभाव से वे भगवान पार्श्व के अधिष्ठायक धरणेंद्र-पद्मावती नाम के देव बने।

चूरू के चंपालालजी बैद की घटना भी इसी तथ्य को पुष्ट करती है। एक बार सामायिक में उन्होंने एक मरणासन्न चिड़िया को नमस्कार महामंत्र सुनाया, उसके प्रभाव से वह चिड़िया तिर्यंच योनि को छोड़कर देव बनी और देव रूप में चंपालालजी के पास पहुंची। कृतज्ञता के साथ-साथ उन्हें वरदान मांगने को कहा। चंपालालजी ने श्री सीमंधर भगवान के दर्शनों की इच्छा व्यक्त की। देव ने उस इच्छा को पूर्ण किया। फिर वहां से आते वक्त देव ने चंपालालजी की इच्छानुसार उन्हें सुजानगढ़ में गुरुदेव श्री तुलसी के दर्शन करवाए। तत्पश्चात् पुनः मूल शरीर में उन्हें स्थापित कर देव अदृश्य हो गया।

उपरोक्त घटना के पश्चात् चंपालालजी ने सोचा कि मुझे कोई स्वप्न आया अथवा सचमुच में यह हकीकत है। उन्होंने निर्णय किया कि आचार्यश्री तुलसी ही इसका समाधान दे सकते हैं। वे उस समय कलकत्ता रहते थे। वहां से सुजानगढ़ गुरुदेव के दर्शन किए। दर्शन करते ही गुरुदेव ने पूछा—चंपालालजी! तीन-चार दिन पहले दर्शन किए, इतने जल्दी वापस कैसे आ गए? चंपालालजी ने कहा—गुरुदेव! मैं जिस जिज्ञासा को लेकर आया था उसका समाधान मुझे मिल गया। उसके बाद उन्होंने संपूर्ण घटनावृत्त गुरुदेव को कह सुनाया।

इस प्रकार अनेक ऐसे उदाहरण हैं। अंतिम समय में महामंत्र की आराधना से अनेक तिर्यंच, मनुष्यों ने सुरपद को प्राप्त किया, एकाभवतारी बने।

इसमें एक रहस्य को समझने की अपेक्षा है कि जयाचार्यश्री ने देव बनने के प्रलोभन से महामंत्र की आराधना का इंगित नहीं किया है। महामंत्र की आराधना शिवपथ की परम पवित्र भावना से करनी चाहिए। जब तक उस स्थिति की योग्यता अथवा प्राप्ति नहीं हो जाती है, तब तक व्यक्ति श्रेष्ठ कुल में व श्रेष्ठ योनियों में रहते हुए अपनी आत्माराधना करे और सुखपूर्वक जीवनचर्या को जीते हुए एक दिन अपने चरम लक्ष्य (मोक्ष) को प्राप्त कर ले।

2. आराधक पद की प्राप्ति—मरणांत समय आराधना करने को बत्तीसवां योग संग्रह बताया है, जो साधना की दृष्टि से बहुत मूल्यवान है—'आराहणाय मरणंते, बत्तीस जोग संगहा'।[8] मृत्यु के आसन्न काल में आराधना की पद्धति प्रचलित हुई है, यही उसका मुख्य आधार है। जयाचार्यश्री ने इसे मरणांत आराधना बतलाया है—

मरणान्त आराधन इह रीतं, करै दश विध तन मन धन प्रीतं।
ते संसार समुद्र तीरै पारं, इम जाण जपो श्री नवकारं।। 10/15

जैन साधना-पद्धति में आराधना और आराधक, दो शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इनका संबंध वर्तमान और आगामी, दोनों जन्मों के साथ संपृक्त है। जो मनुष्य वर्तमान जीवन में ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सम्यक् आराधना करता है, वह आराधक होकर मरता है और अगले जीवन में पूर्वजीवन से अधिक विकास करता है। जयाचार्यश्री ने पंच-परमेष्ठी नमस्कार द्वार में इस तथ्य का सुंदर निर्देश दिया है कि मरणासन्न व्यक्ति यदि मात्र नवकार के सहारे शुभ गति को प्राप्त कर लेता है तो उस व्यक्ति का क्या कहना, जो सम्यक्त्व और चारित्र गुण सहित महामंत्र की आराधना करता है !

ओ तो चरण अमोलक कर आयो, पद आराधक जे मुनि पायो।
करे सर्व दुःखा रो छुटकारं, इम जाण जपो श्री नवकारं।। 10/14

जो मुनि अनमोल चरित्र हस्तगत कर आराधक पद पा लेता है, वह सब दुखों से छुटकारा पा लेता है। ऐसा सोचकर नमस्कार महामंत्र का जप करना चाहिए। इस प्रकार जीवन की संध्या में की जाने वाली दस प्रकार की आराधना करने वाला संसार समुद्र का तीर पा लेता है।

महामंत्र के चमत्कार

लव और कुश ने जब सरयू नदी के किनारे बैठकर श्रीराम की महिमा का संगान किया तो सरयू का जल-प्रवाह थम गया। शोभजी श्रावक ने जब जेल में 'भिक्षु' नाम का स्मरण किया तो आचार्यश्री भिक्षु वहां सदेह उपस्थित हो गए। देखते ही देखते शोभजी की बेड़ियां टूट पड़ीं। वे बंधनमुक्त हो गए। प्रस्तुत आराधना के रचयिता श्रीमज्जयाचार्य ने विशेष संकट की घड़ियों में तन्मय बनकर मुनि-गुण-वर्णन गीत (मुणिन्द मोरा) का संगान किया तो रहस्यमयी अंगारों की वर्षा रुक गई। मांत्रिक द्वारा कृत उपद्रव के कारण बेहोश हुए संतों में चेतना लौट आई। इस ऐतिहासिक घटना का उद्धरण सेवाभावी मुनिश्री चंपालालजी ने एक गीत में इस प्रकार किया है—

धग धगता खीरा बरस्या बीदासर में,
होग्या सै बेहोश सन्त बाकी जी ओ।।
जयाचार्य तन्मय स्तवना सुणाई,
मुणिन्द मोरा ढाल आज साखी जी ओ।।

स्पष्ट है कि जीवन में श्रद्धा का बहुत बड़ा महत्त्व है। जहां श्रद्धा घनीभूत होती है, वहां परिणाम चमत्कार-सा लगता है। वह चैतन्य जागृति की सूचना देती है और तारतम्य भाव की समरसता में मन की भावना सफल हो जाती है। नमस्कार महामंत्र अपराजित मंत्र है। यह अचिंत्य महिमा से मंडित है। अनेक चामत्कारिक घटनाएं इस महामंत्र से अनुबंधित, संबंधित हैं। जयाचार्यश्री ने पंच-परमेष्ठी नमस्कार गीत में कुछ चामत्कारिक घटनाओं का भी उल्लेख किया है।

पन्नग पुष्प नी माल थई, नवकार प्रभावै कीर्ति लही।
सुख श्रीमति उभय भवे सारं, इम जाण जपो श्री नवकारं।। 10/7

सर्प पुष्पमाला बन गया। यह नमस्कार महामंत्र का प्रभाव था। उससे श्रीमति की कीर्ति बढ़ी। उसने दोनों भवों में सारभूत सुख पाया—यह जानकर नमस्कार महामंत्र का जप करें। घटना इस प्रकार है—

श्रीमति एक श्रेष्ठी की पुत्री थी। बचपन में ही उसे जैन साध्वियों का सान्निध्य मिला। वह उनसे प्रभावित हुई। साध्वियों के पास में उसने नमस्कार महामंत्र सीखा। नमस्कार महामंत्र के प्रति उसकी आस्था दिन-प्रतिदिन प्रगाढ़ होती गई। वह कोई भी काम करने से पूर्व इस महामंत्र का स्मरण करती, फिर काम में हाथ डालती। उसका विश्वास था कि ऐसा करने से वह हर काम में सफल हो जाती है।

श्रीमति वयस्क हुई। उसकी शादी कर दी गई। ससुराल में जाकर भी उसने नमस्कार महामंत्र के जप का क्रम चालू रखा। वहां इस मंत्र को कोई नहीं जानता था। सास ने बहू को गुनगुनाते हुए सुना। उसके मन में संदेह उभर आया। उसने सोचा, यह कोई जादूगरनी है, इसलिए इसे समाप्त कर देना चाहिए।

सास ने एक घड़े में सांप रखा। उसका मुंह बंद कर दिया। बहू के हाथों में वह घड़ा थमाते हुए कहा—जाओ बहू, पनघट पर जाकर पानी ले आओ। श्रीमति ने नमस्कार महामंत्र का स्मरण किया और घड़ा लेकर सीधी पनघट पर पहुंची। घड़ा खोला तो उसमें एक पुष्पमाला निकली। बहू ने उसे सास का प्रसाद मानकर गले में डाल लिया। पानी लेकर वह घर पहुंची तो सास के आश्चर्य का कोई पार नहीं रहा। क्योंकि वह तो उसकी मृत्यु का संवाद पाने के लिए आतुर हो रही थी। जब बहू के गले में पुष्पहार देखा तो उसे विश्वास हो गया कि यह निश्चित रूप से जादूगरनी है। वह मन ही मन श्रीमति से भय खाने लगी। आखिर सास जब नमस्कार महामंत्र के प्रभाव से अवगत हुई तब उसके मन का संशय दूर हो गया। मंत्र के चामत्कारिक प्रभाव से श्रीमति ने अपने पूरे

परिवार को मंत्रमय बना लिया। इस प्रकार अगली गाथा में अन्य घटना प्रसंग का उल्लेख करते हुए लिखा है—

अग्नि ठंडी कीधी देवा, कियो कनक सिंहासण ततखेवा।
ऊपर अमरकुंवर प्रति बैसारं, इम जाण जपो श्री नवकारं।।

देवों ने अग्नि ठंडी कर तत्क्षण सोने का सिंहासन बनाया और अमरकुमार को उस पर बैठा दिया। यह जानकर नमस्कार महामंत्र का जाप करें। घटनावृत्त इस प्रकार है—

राजगृह नगरी में राजा श्रेणिक एक राजप्रासाद बना रहा था। ज्योंही वह पूर्ण होने जाता, त्योंही ढह जाता। इस प्रकार कई बार प्रासाद के ढह जाने पर राजा ने कुछ ब्राह्मणों के पास समस्या रखी। उन्होंने सोच-विचार कर कहा—महाराज! इसके लिए बत्तीस लक्षणों वाले पुरुष का होम करना होगा। राजा ने उसी समय शहर में उद्घोषणा करवाई—जो व्यक्ति अपने बत्तीस लक्षणों से युक्त पुत्र का होम करने देगा, उसे उस व्यक्ति के बराबर सोना दिया जाएगा। शहर के सब लोगों ने यह घोषणा सुनी, पर कोई भी अपने पुत्र को देने के लिए तैयार नहीं हुआ।

भद्रा नाम की एक ब्राह्मणी ने, अपने पति के मना करने पर भी, इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। अपने लक्षणसंपन्न पुत्र को राजपुरुष के हाथों में सौंप दिया। रानी चेलना को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने राजा को बहुत समझाया, पर राजा ने उसकी एक न सुनी। रानी ने होम करने वाले को भी धमकाया। उन्होंने राजा के भय से रानी की बात को महत्त्व नहीं दिया। दूसरा कोई उपाय न देखकर रानी उस बिलखते बालक के पास पहुंची और उसे आश्वस्त करते हुए बोली—अमरकुमार! लो मैं तुम्हें एक मंत्र बताती हूं, उसका स्मरण करो।

रानी के ममताभरे शब्द सुनकर अमरकुमार के आंसू रुक गए। वह उत्सुक होकर बोला—'मां, जल्दी बताओ, वह मंत्र कौन-सा है?' रानी ने उसे नमस्कार महामंत्र सुनाया, तो वह बोला—'मां! यह तो मैं जानता हूं। मैंने इसे साधुओं के पास सीखा है।' रानी बोली—'अमरकुमार! अब चिंता की कोई बात नहीं, तुम शांत और स्थिर मन से इसका जाप करो।'

अमरकुमार को रानी के शब्दों से बड़ा सुख मिला। वह आंख मूंद कर नमस्कार महामंत्र का जप करने लगा। होम करने वाले आए। उन्होंने ज्योंही अमरकुमार को अग्नि में ढकेलना चाहा, अग्नि ठंडी हो गई। वहां एक सिंहासन हो गया। अमरकुमार उस सिंहासन पर आरूढ़ हो गया और होम करने वाले मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

ज्योंही राजा को यह संवाद मिला, वह तत्काल दौड़ा-दौड़ा घटनास्थल पर पहुंचा। सारी स्थिति की जानकारी कर अमरकुमार को अपने गले लगा लिया। राजा ने कुमार से राज्य करने का आग्रह किया, पर कुमार बोला—'मैं जिस महामंत्र के प्रभाव से बचा हूं, उसी की शरण स्वीकार करूंगा। राज्य लेकर मुझे क्या करना?' कुमार ने मुनि-जीवन स्वीकार किया और साधना में लीन हो गया।

तृतीय घटना के संदर्भ में जयाचार्यश्री ने ग्वाले के दृष्टांत का उल्लेख करते हुए लिखा है—

बाल बच्छड़ा चरावतो जिहवारं, नदी पूर आया गुण्यो नवकारं।
थइ तत्खिण सरिता दोय डारं, इम जाण जपो श्री नवकारं।। 10/10

बालक जंगल में बछड़े चरा रहा था। वहां नदी का पूर आने पर उसने नमस्कार महामंत्र का सुमिरन किया। उससे नदी तत्काल दो धाराओं में विभक्त हो गई, यह जानकर नमस्कार महामंत्र का जप करें। घटनावृत्त इस प्रकार है—

एक गोपाल बाल जंगल में बछड़े चराने ले जाता था। दिन-भर उन्हें चराकर शाम को वह शहर लौट आता था। एक दिन उसने जंगल में गुजरते हुए मुनि को देखा। वह उसके पास पहुंच कर बोला—मुनिजी! आप शहर के लोगों को तो उपदेश देते ही हैं, मुझे भी कोई रास्ता बता दें। मुनि ने बालक को प्रतिबोध देकर नमस्कार महामंत्र सिखा दिया।

बालक ने पूछा—'मुनिजी! इस महामंत्र से क्या होता है?' मुनि बोले—'इस मंत्र की महिमा अचिंत्य है। इसके प्रभाव से हर कठिन काम सरल हो जाता है और दुख-दुविधाएं दूर हो जाती हैं।' बालक पूरी निष्ठा के साथ मंत्र का जप करने लगा।

वर्षा का मौसम था। वह सदा की भांति बछड़ों को जंगल में चरा रहा था। सहसा मूसलाधार पानी बरसा और बरसाती नदी पूरे वेग के साथ बहने लगी। पूरा दिन व्यतीत हो गया, पर नदी का पानी कम नहीं हुआ। बालक हताश होकर नदी के तट पर बैठ गया। सोचने लगा, वह अपने बछड़ों को लेकर शहर में कैसे पहुंचेगा?

उसे यही एक चिंता सता रही थी। बछड़ों को अपने आस-पास बैठाकर वह नमस्कार महामंत्र का जप करने लगा। थोड़ी देर में ही वह जप में तन्मय हो गया। देखते ही देखते नदी दो भागों में बंट गई। बीच में ऐसा रास्ता बन गया जहां बिल्कुल पानी नहीं था। बच्चे की आंखें खुलीं। उसने अपना मार्ग प्रशस्त देख बछड़ों के साथ वहां से प्रस्थान किया और नमस्कार महामंत्र जपता हुआ सकुशल शहर पहुंच गया।

चतुर्थ घटना का उल्लेख जयाचार्यश्री की इस गीतिका में निम्न प्रकार से मुखर हुआ है—

सेठ समुद्र में डूबंतो, नवकार गुण्यो धर चित्त शंतो।
सुर ज्हाज उठाय म्हेली पारं, इम जाण जपो श्री नवकारं।।

सेठ समुद्र में डूब रहा था। उस समय उसने शांत मन से नमस्कार महामंत्र जपा। उसी समय देवों ने जहाज को उठाकर पार पहुंचा दिया। यह जानकर नमस्कार महामंत्र का जप करें।

घटनावृत्त इस प्रकार है—

एक श्रेष्ठी समुद्र यात्रा कर रहा था। जलपोत के समुद्रमध्य पहुंचते ही तूफान आ गया। जलपोत डगमगाने लगा। भीतर बैठे हुए व्यक्ति घबरा गए। एक व्यक्ति ने श्रेष्ठी को संबोधित कर कहा—'सेठजी! आप हर बार महामंत्र की महिमा बताते रहते हैं। यदि आपके मंत्र में शक्ति है तो उसका प्रभाव आज दिखाइए।'

तेज हवाएं चल रहीं थीं। तूफान के थमने की कोई संभावनाएं नहीं थी। श्रेष्ठी ने ध्यान लगाया और नमस्कार महामंत्र का जप प्रारंभ कर दिया। उसके मन में मंत्र के प्रभाव को लेकर कोई आशंका नहीं थी। वह निश्चिंत होकर जप करता रहा। कहा जाता है कि उस समय किसी देव का आसन प्रकंपित हुआ। वह अपना विमान छोड़कर आया। उफनते हुए समुद्र में जलपोत डगमगा रहा था। देव ने उसको अपने हाथों पर उठाया और उस पार पहुंचा दिया। जलपोत के यात्रियों ने प्रत्यक्षतः एक चमत्कार देखा। सब उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे।

अंतिम पद्य में अपने आराध्य आचार्यश्री भिक्षु आदि पूर्वज आचार्यों के प्रति कृतज्ञता में उनकी विनम्रता का वैशिष्ट्य देखा जा सकता है—

भिक्षु भारीमाल गणि ऋषिरायो, सुद तास प्रसादे सुख पायो।
वारू जय जश सम्पति जयकारं, इम जाण जपो श्री नवकारं।

भिक्षु भारीमाल और ऋषिराय के प्रसाद से मैंने विशुद्ध सुख, यश, संपत्ति और जय-जयकार प्राप्त किया।

चौबीसी जयाचार्यश्री का भक्तिकाव्य है। जिसमें संपूर्ण जैन वाङ्मय का सार अंतर्निहित है, यदि ऐसा कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसमें जयाचार्यश्री ने 'णमो अरहंताणं'—अर्थात् चौबीस तीर्थंकरों के संक्षिप्त जीवन-दर्शन के साथ-साथ अध्यात्म के गूढ़ रहस्य भर दिए हैं। इस रचना में जयाचार्यश्री ने सर्वप्रथम पंच-परमेष्ठी को ओंकार के रूप में नमस्कार किया है और उसका ॐकार के साथ संबंध प्रदर्शित किया है—

ॐ नमः अरिहंत अतनु, आचारज उवज्झाय।
मुनि पंचपरमेष्ठि ए, ॐकार रै मांय।।चौ. दोहा-1।।

प्रस्तुत कृति को जयाचार्य ने स्वयं ध्यान सुधारस के रूप में अंकित किया है—

जिन चौबीस तणा सुगुण, रचियै वचन रसाल।
ध्यान सुधा वर सार रस, जय जशकरण विशाल।। चौ. दो.-17।।

नमस्कार महामंत्र ध्यान पद्धति

जयाचार्य के साहित्य का सिंहावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि उनके जीवन में स्वाध्याय, ध्यान व जप की त्रिवेणी सतत प्रवहमान थी, जो जीवन के अंतिम क्षणों तक चली। उनके द्वारा प्रतिपादित छोटी और बड़ी चौबीसी के गहन अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें ध्यान का विकास युवाचार्य अवस्था में ही हो गया था। बड़ी चौबीसी की विषय-वस्तु नाम-स्मरण और जाप-प्रधान है, जिसकी रचना उन्होंने मुनि अवस्था में की थी और छोटी चौबीसी की विषय-वस्तु में ध्यान की प्रधानता है, जिसमें भक्ति का स्वर मुख्य है। वे एक सधे हुए योगी थे। उनका एक ग्रंथ 'छोटा ध्यान' के नाम से विश्रुत है, जिसमें नमस्कार महामंत्र के ध्यान की पद्धति वर्णित है। छोटा ध्यान:[9]

णमो अरहंताणं : (1) आप बैठो तिहां थी मुख आगे जाणै श्री अरिहंत देव विराज्या छै। अरिहंत देव नो वरण सफेद छै—कुन्द नो फूल, समुद्र ना झाग, अनै कपूर रो ढिगलो, एहवा श्री तीर्थंकर देव विराज्या छै। ते घणा बरस घर में रही दिव्यता लेइ, थिर आसण करी, चंचल जोग रूंधी, घणो अत्यंत निर्मल ध्यान ध्यायी, योग मुद्रा साधी, केवल ज्ञान-दर्शन पाया। ते स्फटिक सिंहासन पर विराजमान छै। मस्तक ऊपर तीन छत्र, बे पासे चामर, अशोक वृक्ष, भा मंडल, धर्म चक्र करी शोभ रह्या छै।

मुख आगे साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, इंद्र-इन्द्राण्या, देवी-देवता, नर-नारियां री परिषद बैठी छै। भगवंत नै देख-देख हर्षे छै।

(2) ते भगवंत अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत बल ना धारणहार छै। अनंता अनंता जीवा री गतागति, भव स्थिति, आयु-अनुबंध तथा प्रच्छन्न नै प्रकट सर्व कर्म जाणै छै। मांहारा पिण सुभासुभ जोग सर्व जाणै छै।

(3) हे दयाल! हे गोपाल! हे कृपाल! हे माहण! हे महानिर्यामक! आप राग-द्वेष ना जीतणहार, काम, भोग, क्रोध रा मथणहार संसार रूपिया समुद्र में डूबता भवि प्राणी नै तारणी नावा समान, अत्यंत पर उपकारी पुरुष तीन लोक रा नाथ, अनाथा रा नाथ आपरो शरणों, आपरो आधार, आप रै चरणां मैं म्हारो मस्तक। आपरी वाणी मीठी खीर समुद्र नो पाणी तेहथी आपरी वाणी घणी मीठी, पैतीस गुणै करी संयुक्त छै।

(4) शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श म्हा अनर्थ नां हेतु, राग द्वेष दुख ना दाता कह्या। ए शब्दादिक काम भोग अनंत आत्मिक सुख अनै पुद्‌ग्लिक सुख नां विघ्न ना पाडणहार कह्या। नरक निगोद मां दुख तेहना संजोग ना मिलावणहार कह्या। एहवी अरिहंत देव री वाणी। त्यां अरिहंता नै वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं पज्जवासामि मत्थेण वंदामि।

हिंदी अनुवाद

णमो अरहंताणं : (1) ध्याता जहां बैठे हों, वहां ऐसा अनुभव करें कि मेरे सामने अर्हत् भगवान का रंग कुंद के फूल, समुद्र के फेन तथा कपूर के ढेर जैसा सफेद है। उन्होंने बहुत वर्षों तक घर में रहकर दीक्षा स्वीकार की। दीक्षित हो उन्होंने स्थिर आसन लगा योगों (मन, वचन और शरीर) की चंचलता रोक, अत्यंत निर्मल ध्यान कर योगमुद्रा साधकर केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त किया। वे स्फटिक सिंहासन पर विराजमान हैं। उनके मस्तक पर तीन छत्र और उभय पार्श्व में दो चामर हैं। वे अशोक वृक्ष, भामंडल और धर्मचक्र से सुशोभित हो रहे हैं। उनके सामने साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, इंद्र-इंद्राणी, देवी-देवता, पुरुष-स्त्री रूप परिषद बैठी हुई है, जो भगवान के दर्शन कर अधिक हर्षित हो रही है।

(2) अरिहंत भगवान अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत बल के धारक हैं। वे अनंत जीवों की गति, आगति, भवस्थिति, आयुष्य, अनुबंध तथा प्रच्छन्न और प्रकट, प्रत्येक कार्य को जानते हैं। मेरे भी शुभ-अशुभ सब योगों को जानते हैं।

(3) हे दयालु! हे गोपाल! हे कृपालु! हे महान! हे महानिर्यामक! आप राग-द्वेष को जीतने वाले हैं। काम-क्रोध का मंथन करने वाले हैं। संसार-समुद्र में डूबते हुए प्राणियों के लिए नौका के समान हैं। परोपकार करने में प्रवण हैं, तीन लोक के स्वामी हैं और अनाथों के नाथ हैं। मेरे लिए आप ही शरण हैं। आप ही आधार हैं। मेरा सिर आपके चरणों में प्रणत है। आपकी वाणी क्षीर-समुद्र के जल से भी अधिक मधुर है। वाणी पैंतीस गुणों से युक्त है।

आपने शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श को महान अनर्थ का हेतु तथा राग-द्वेष को दुखदायक कहा। इन शब्दादि विषयों और कामभोगों को आपने आत्मिक और पौद्‌गलिक, दोनों प्रकार के सुखों में विघ्न उपस्थित करने वाले तथा नरक-निगोद के दुखों का संयोग मिलाने वाले बताए। ऐसी वाग्‌-संपदा से संपन्न श्री अरिहंत भगवान को मैं वंदन करता हूं, नमस्कार करता हूं, उनका सत्कार करता हूं, सम्मान करता हूं, वे कल्याणकारी हैं, मंगलरूप हैं, धर्मदेव हैं और चिद्‌-स्वरूप हैं। मैं उनकी पर्युपासना करता हूं और मस्तक झुकाकर उन्हें वंदन करता हूं।

णमो सिद्धाणं : सिद्ध भगवान जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, दुख, दारिद्र, कर्म, भर्म रहित छै। आठ गुणा करी सहित छै। केवल ज्ञान, केवल दर्शन, अनंत आत्मिक सुख, श्वायक समकित, अटल अवगाहन, अमूर्तिपणो, अगुरुलघुपणो, अंतराय रहित एहवां गुण करी सहित छै। कलकली भूत संसार, महादुख क्लेश नो सागर तेहथी छूटा। अनंत आत्मिक सुखा मै लयलीन एहवां सिद्धजी नै वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जवासामि, मत्थेण वंदामि।

हिंदी अनुवाद

णमो सिद्धाणं—सिद्ध भगवान जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक, दुख, दारिद्र्य, कर्म और भ्रम रहित हैं। वे केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंत आत्मिक सुख, क्षायिक सम्यक्त्व, अटल अवगाहन, अमूर्तित्व, अगुरुलघुत्व और निरंतराय—इन आठ गुणों से संपन्न हैं। वे इस अत्यंत दुख

और संक्लेश के समुद्र कलकली-भूत संसार से मुक्त हैं। अनंत आत्मसुखों में रमण करने वाले श्री सिद्ध भगवान को मैं वंदन करता हूं, नमस्कार करता हूं, उनका सत्कार करता हूं, सम्मान करता हूं। वे कल्याणकारी हैं, मंगलरूप हैं, धर्मदेव हैं और चिद्स्वरूप हैं। मैं उनकी पर्युपासना करता हूं और मस्तक झुकाकर उन्हें वंदन करता हूं।

णमो आयरियाणं : नमस्कार थांवों आचार्य जी नै। तै आचार्य जी पंच महाव्रत पालै, च्यार कषाय टालै, पंच इंद्रिय वश करै, पंच आचार पालै, पंच समीति, तीन गुप्ति, नवबाड सहित ब्रह्मचर्य धारै एहवां गुण सहित आचार्य जी नै वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जवासामि, मत्थेण वंदामि।

हिंदी अनुवाद

णमो आयरियाणं—आचार्यदेव पांच महाव्रतों को पालने वाले हैं। चार कषाय को टालने वाले हैं। पांच आचार का पालन करने वाले हैं। पांच समिति और तीन गुप्ति की साधना करने वाले हैं। नवबाड़ सहित ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करने वाले हैं। इन गुणों से युक्त श्री आचार्यदेव को मैं वंदन करता हूं, नमस्कार करता हूं, सत्कार करता हूं, सम्मान करता हूं। आप कल्याणकारी हैं, मंगलरूप हैं, धर्मदेव हैं और चिद्स्वरूप हैं। मैं उनकी पर्युपासना करता हूं और मस्तक झुकाकर उन्हें वंदन करता हूं।

णमो उवज्झायाणं : नमस्कार थांवों उपाध्याय जी नै। तै उपाध्याय जी इग्यारै अंग, बारै उपांग, चवदै पूरव भणै-भणावै, सिद्धांत रूपी रासडी करी मन रूपिया अश्व नै ठिकाणै आणै। एहवां उपाध्याय जी नै वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जवासामि मत्थेण वंदामि।

हिंदी अनुवाद

णमो उवज्झायाणं—उपाध्यायजी ग्यारह अंग, बारह उपांग, चौदह पूर्व का अध्ययन-अध्यापन करवाते हैं। वे सिद्धांत रूपी डोरी से मन रूपी अश्व को बांध स्थान पर लाते हैं। ऐसे उपाध्यायजी को मैं वंदन करता हूं, नमस्कार करता हूं, सत्कार करता हूं, सम्मान करता हूं। आप कल्याणकारी हैं, मंगल रूप हैं, धर्मदेव हैं और चिद्स्वरूप हैं। मैं उनकी पर्युपासना करता हूं और मस्तक झुकाकर उन्हें वंदन करता हूं।

णमो लोए सव्व साहूणं : नमस्कार थावो सर्व साधुजी नै। ते साधुजी पंच महाव्रत पालै, चार कषाय टालै, पंच इंद्रियां वश करै, भाव सच्चे, करण सच्चे, मन-वचन-काय समाहरणे, ज्ञान संपन्ने, दर्शन संपन्ने, चारित्र संपन्ने, वेदनी आया समो अहियासे, मरण आया समो अहियासे, क्षमावंत, वैराग्य वंत, धर्म शुक्ल ध्यान ध्यावै, तेजु, पद्म, शुक्ल लेश्या सहित। एहवां साधु पुरुषा नै वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जवासामि मत्थेण वंदामि।

हिंदी अनुवाद

णमो लोए सव्व साहूणं—साधु पांच महाव्रत का पालन करने वाले हैं। चार कषाय को छोड़ने वाले हैं और पांच इंद्रियों को वश में करने वाले हैं। वे भावसत्य, करणसत्य और योगसत्य हैं। वे मन, वचन, काया को समाहित कर रहने वाले हैं। वे ज्ञान, दर्शन और चारित्र से संपन्न हैं। वेदना और मृत्यु के उपस्थित होने पर वे समभाव से सहन करते हैं। वे क्षमासंपन्न हैं। धर्म-ध्यान व शुक्ल-ध्यान की साधना करने वाले हैं तथा तैजस, पद्म व शुक्ल-ध्यान से संपन्न हैं। ऐसे साधु पुरुष को मैं वंदन करता हूं, नमस्कार करता हूं, सत्कार करता हूं, सम्मान करता हूं। वे कल्याणकारी हैं, मंगल रूप हैं, धर्मदेव हैं और सद्चिद रूप हैं। मैं उनकी पर्युपासना करता हूं और मस्तक झुकाकर उन्हें वंदन करता हूं।

बड़ा ध्यान

'छोटो ध्यान' की तरह 'बड़ो ध्यान' भी जयाचार्यश्री की एक कृति है। जिसमें जयाचार्य ने ध्यान की कुछ पद्धतियों का निर्देश किया है। जैन साधना-पद्धति का मूल तत्त्व है—'त्रिगुप्ति साधना'। इसका तात्पर्य है—आसन, मौन और एकाग्रता का अभ्यास। बड़ा ध्यान इसी से प्रारंभ होता है। मन की चंचलता कैसे मिटे? इस प्रश्न के समाधान में उन्होंने श्वास के प्रवेश और निर्गम पर, 'सोऽहं' पर चित्त केंद्रित करने का निर्देश दिया है। ध्यान का दूसरा प्रकार तीर्थंकर ध्यान बताया है। ध्यान का तीसरा प्रकार सिद्ध ध्यान और चौथा ध्यान है—कर्म विपाक का चिंतन। ध्यान के पश्चात् अशौच अनुप्रेक्षा के अनुचिंतन की पद्धति बतलाई है। इस कृति में जयाचार्यश्री द्वारा निर्दिष्ट 'सिद्धां रै ध्यान रा प्रयोग' जिस रूप में उपलब्ध है, वह प्रयोग निम्न प्रकार से है—

सिद्धां रै ध्यान रो प्रयोग : ते सिद्ध भगवान जन्म, जरा, रोग, शोक, दुःख, दारिद्र, कर्म, भ्रम रहित छै, आठ गुणां सहित छै। ते अनंत आत्मिक गुण में सदा लयलीन छै। कलकलीभूत संसार महाक्लेश नो सागर, ते थकी छूटा छै। ते सिद्ध भगवान नो ध्यान एकाग्रचित्त, मन थिर राख नै करणो।

एहवा सिद्ध समान म्हारों जीव छै। पिण ते जीव असुधपणे, कर्म सूं संसारावस्था में आपो भूल रह्यो छै। राग, द्वेष, कषाय, आश्रव ए म्हारां नहीं। हूं एहं सूं न्यारो छूं। अनंत ज्ञान-दर्शन-चरित्र-वीर्य वालो सुध, बुध अविनाशी छूं...।

सुध चिदानंद म्हारो जीव छै। पिण कर्म थकी परवस्य वर्ते छै। ते माहे जे विषयादि कर्म ना स्वभाव ते हमे हूं। रक्त थावूं नहीं। एथी म्हारो निरमल चिदानंद स्वभाव न्यारो छै। इम निज स्वभाव पर स्वभाव भिन्न पणै चिंतवै। विषयादिक थी आत्मा न्यारो गिणै।

एहवो जीव छै तो पिण कर्म बसी दुखी छै। ते हेते कर्म नो विपाक चिंतवै, जियां ज्ञान गुण ज्ञानावरणीय कर्म दाब्यो छै। दर्शनावरणीय कर्म दर्शन गुण दाब्यो छै। इम आठ कर्म जीव ना आठ कर्म दाब्या छै। एतले संसार में भमतो जीव नै जे सुख-दुःख ते सर्व कर्म ना कीधा छै। तिहां सुख ऊपर तो राचवो नहीं, दुःख ऊपना दिलगीर होइवो नहीं।

हिंदी अनुवाद

सिद्धों के ध्यान का प्रयोग—सिद्ध भगवान जन्म, जरा, मरण, शोक, रोग, दुख, दारिद्र्य, कर्म और भ्रम से रहित हैं। अनंत ज्ञान आदि आठ गुणों से युक्त हैं और अंतहीन आत्मसुख में निरंतर लीन हैं। वे महाक्लेश के समुद्र कलकलीभूत संसार से मुक्त हैं। चित्त को एकाग्र कर मन से उक्त स्वरूप सिद्ध भगवान का ध्यान करना।

ऐसे सिद्ध भगवान के स्वरूप जैसा ही मेरा स्वरूप है, किंतु कर्म-मल से अशुद्ध होने के कारण मैं संसारावस्था में अपना आपा भूल रहा हूं। राग-द्वेष, कषाय और आश्रव मेरे अपने नहीं हैं। मैं इनसे भिन्न हूं। मैं अनंत ज्ञान-दर्शन-चारित्र और वीर्य-संपन्न शुद्ध, बुद्ध तथा अविनाशी हूं।

मेरी आत्मा अजर, अमर, अनादि, अनंत, अक्षय, अचल, अकल, अमल, अगम, अनमी, अरूपी, अकर्म, अबंधक, अनुदय, अनुदीरक, अयोगी, अभोगी, अरोगी, अवेदी, अछेदी, अकषायी, अलेशी, अशरीरी, अभाषी, अनाहारी, अव्याबाध, अगुरुलघु, अनिंद्रिय, अप्राणी, अयोनि, असंसारी, अमर, अपर, अपरंपर, अव्यापी, अनाश्रिता, अकंप, अविरुद्ध, अनाश्रव, अलख, असंज्ञी, अनाकार, लोकालोक ज्ञापक और शुद्ध चिदानंदमय है। किंतु अभी यह कर्मों के अधीन है। इसलिए जो विषय आदि कर्म पुद्‌गलों के स्वभाव हैं, उनमें मुझे आसक्त नहीं होना है। मेरा निर्मल चिदानंदमय स्वभाव इनसे सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार ध्यान में आत्मा और पुद्‌गल के स्वभाव का भिन्न-भिन्न रूप से चिंतन करें। आत्मा को विषय आदि से भिन्न समझें।

जीव का स्वरूप सिद्ध जैसा है। फिर भी वह कर्मों के कारण दुखी है। इसलिए कर्म के विषय का चिंतन करना चाहिए। जैसे ज्ञानावरणीय कर्म के कारण ज्ञान-गुण दबा हुआ है, इस प्रकार जीव के आठ गुण आठ कर्मों के द्वारा दबे हुए हैं। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि संसारी प्राणी को जितने सुख-दुख होते हैं, वे सब कर्मों के कारण हैं। ऐसे सुख में आसक्त नहीं होना और दुख में व्यथित नहीं होना चहिए।

बड़ा ध्यान कृति लघुकाय होने पर भी प्रतिपाद्य विषय की गुरुता की दृष्टि से सचमुच बड़ी है। यह कृति पढ़ने से ऐसा लगता है कि यह ग्रंथों के आधार पर की हुई रचना नहीं है, अपितु अभ्यास व अनुभव के आधार पर की हुई रचना है। लिखा है—'ध्यान निर्मल चढ़ै जदै गुण घणां प्रकट थाय अनै घणां गुणगान करै तिवारे ध्यान निर्मल चढ़ै तिवारे जेहवो रंग चिंतवे तेहवोइ दिसण लाग ज्यावै नै इम जाणै श्री भगवंत इज इम ठिकाणै विराज्या है।'[10]

स्पष्ट है कि जयाचार्यश्री ने इस ध्यान का अनुभव किया था और उसे एक लघुकाय ग्रंथ का रूप दिया। इसमें भेद-विज्ञान का बहुत सुंदर वर्णन किया गया है।

जयाचार्यश्री ने शीतलनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहा है—'उवा दिशा किण दिन आवसी तब होसूं तुझ सरीस'।

वस्तुतः महान आत्माओं की स्तुति, महान आत्माओं को किया नमन स्वयं व्यक्ति को महान बनाता है। इसलिए नहीं कि स्तुतिकार या नमनकर्ता महाज्ञानी है, या महाध्यानी है, किंतु इसलिए कि गाया हुआ अथवा कहा हुआ सत्य

उसकी अनुभूति में रचपच जाता है और तब स्तुति साकार हो जाती है। आचार्य विनोबा भावे से पूछा—'आपकी भक्ति का स्वरूप क्या है?' उन्होंने कहा—'मैं प्रभु का अतीत हूं। प्रभु मेरे भविष्य हैं। मैं भगवान का वर्तमान में अनुभव करूं—यही मेरी भक्ति है।'

जयाचार्यश्री भी 'वाही दशा किण दिन आवसी' से यह बताना चाहते हैं कि भविष्य में मैं भी प्रभु-तुल्य हो जाऊंगा। आचार्यश्री मघवागणी ने उनके जीवन चरित्र में लिखा है कि जयाचार्यश्री योग-शास्त्र की युक्तियों को जानते थे—

जोग शास्त्र तणी कै युक्ति, अति उंडी समय रेस।
व्याख्यान हेतु दृष्टांत युक्ति अति, ज्ञायक सखर गणेश।।[11]

अपनी प्रत्येक रचना के अंतिम दोहे में जयाचार्यश्री का साहित्यिक नाम 'जय जश' अंकित है, जो मंत्र रूप और जय-विजय का प्रतीक है। मंत्राक्षरों के रहस्य-विज्ञाता आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने 'मंत्र एक समाधान' (पृ. 81) में प्रभावशाली व्यक्तित्व के निर्माण में इस मंत्र का निम्न प्रकार से उल्लेख किया है—

प्रभावशाली व्यक्तित्व—1. मंत्र—जय जश कर जगदीश। **2. मंत्र संख्या**—प्रतिदिन एक माला। **3. परिणाम**—इनसे व्यक्तित्व का विकास होता है और वह प्रभावशाली बनता है।

निष्कर्षतः ऐसा कहा जा सकता है कि श्रीमज्जयाचार्य एक ऐसे महामना थे जिनका नाम स्वयं में एक मंत्ररूप है। पंच-परमेष्ठी के प्रति अगाध समर्पण जिनकी नस-नस में ऐसे प्रवाहित था, जैसे धमनियों में रक्त। सचमुच वे महान योगी थे। वे युगद्रष्टा, आत्मद्रष्टा, क्रांतद्रष्टा, सत्यद्रष्टा, मंत्रद्रष्टा, मंत्रस्रष्टा आचार्य थे। एक अबोला, अनकहा आकर्षण उनके व्यक्ति में था, जिनकी प्रज्ञा गंगोत्री का न माप है, न मापदंड। ❖

संदर्भ :

1. वीतराग वंदना, पृ. 44
2. आराधना, पृ. 142
3. आराधना, पृ. 143
4. अमृत कलश, पृ. 300
5. वीतराग वंदना, पृ. 51
6. तेरापंथ का इतिहास, पृ. 448
7. आराधना, पृ. 75
8. अंग सुत्ताणि भाग 1, पृ. 875, 876, समवाओ 32/1
9. आराधना, पृ. 92 से 94
10. आराधना, पृ. 34
11. आचार्य चरितावली : खंड 2, पृ. 203, जय सुजश : ढाल 67, गाथा 31 ❖❖

आत्मतत्त्व और उसका फल

पृष्ठ 20 का शेष

हैं। क्योंकि उससे मनुष्य-जाति की बहुत बड़ी प्रगति हो सकेगी। इसी तरह जब आध्यात्मिक विज्ञान में आत्म-तत्त्व का सबसे प्रथम आविष्कार हुआ तब ऋषियों को लगा कि इससे बढ़कर मानवता के हित के लिए अधिक श्रेष्ठ कोई आविष्कार है नहीं। इतना सार्वभौम आविष्कार होते ही ऋषियों के आनंद का पार नहीं रहा होगा। उन्होंने कितना बड़ा उत्सव किया होगा।

आज हम आत्मा शब्द से चिर-परिचित हो गए हैं। हमारे लिए उसमें नवीनता नहीं है, लेकिन जब आत्मा का साक्षात्कार होता है, तब लोकोत्तर आनंद तो होता ही है, जीवन में स्थाई परिवर्तन भी होता है।

व्यवहार में अपने आत्मीयजनों को हम प्यार करते हैं, अच्छी-अच्छी चीजें उनको भेंट में देते हैं, उनकी स्तुति करते हैं। लेकिन दो आत्मज्ञानियों में मैत्री का संबंध हो—साथी का हो अथवा गुरु-शिष्य का हो—वह आत्मीय संबंध ही होगा। जैसा मेरे शरीर के साथ मेरा आत्मीयता का संबंध है, इसलिए मैं उसे खिलाता हूं, पिलाता हूं, जरूरत पड़ने पर भूखा भी रखता हूं, दवाइयां देता हूं। उसी तरह आत्मोत्सर्ग यानी बलिदान करने का मौका आने पर उसी उत्कट आत्मीयता के कारण शरीर का बलिदान भी देता हूं और बलिदान देते कभी मन में यह भाव नहीं आता कि शरीर के प्रति मैं कठोर हुआ हूं, स्वार्थवश होकर, कठोर होकर, शरीर का नाश होने दे रहा हूं। हम अपने मन से कहते हैं कि शरीर, मन, प्राण और आत्मा—सब एक ही हैं। बलिदान में ही शरीर की कृतार्थता है और इसी में मेरी और मेरे शरीर की आत्मीयता, अद्वैतता सिद्ध होती है।

❖

युवाचार्य मनोनयन
24 सितंबर
विशेष

संस्कारों की अग्नि से निसृत कुंदन

साध्वी सुमतिप्रभा

जो व्यक्ति कुछ होने की तमन्ना रखता है, कुछ कर गुजरने का हौसला रखता है— वह एक दिन अवश्य ही अपने भाग्य, बुद्धि और परिश्रम के बलबूते पर जनमानस के पटल पर सफल व्यक्तित्व के रूप में उभर सकता है।

मोहन एक ऐसे व्यक्ति का नाम है जो बचपन से ही प्रतिभा-संपन्न था। उसमें सूझबूझ, ग्रहणबुद्धि और प्रशासनिक योग्यता प्रारंभ से ही थी। वह तीसरी, चौथी और पांचवीं कक्षा में 'मोनीटर' के रूप में रहा। उसने तीनों ही कक्षाओं में गणित और सामान्य विज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त की तथा कक्षा में प्रथम स्थान भी प्राप्त किया।

इसी मोहन ने अपनी वय का ज्योंही एक दशक पूरा किया, उसकी जीवनशैली में परिवर्तन आने लगा। उस समय सरदारशहर में एक मुनिश्री दुलीचंदजी 'दिनकर' का प्रवास था। उनके सहवर्ती मुनिश्री पानमलजी बच्चों को कहानियां सुनाया करते थे। मोहन भी उनके पास जाने लगा।

समय-नियोजन गुण के सहज धनी मोहन ने अपनी निश्चित दिनचर्या बना ली थी। उस दिनचर्या के अनुसार ही वह अपने सारे कार्य संपादित करता था। दिनचर्या का अतिक्रमण उसे बिल्कुल पसंद नहीं था। कदाचित किसी कारणवश दिनचर्या अस्त-व्यस्त हो जाती तो वह उसका प्रायश्चित्त करता। उसकी दिनचर्या सूर्योदय से लगभग डेढ़ घंटे पहले शुरू होती और प्रहर रात्रि बीतने के बाद संपन्न होती। उसके दिन के तेरह घंटे, या कुछ कम/अधिक सेवा, स्वाध्याय, अध्ययन, कंठस्थ आदि में बीत जाते। मोहन की इस प्रकार की चर्या को देखकर मुनिजन भी यदा-कदा दीक्षा लेने के लिए उसे प्रेरित करते रहते।

संतों की सेवा करने का संभवतः उसका वह प्रथम अवसर था। अब तक जो आनंद खेलकूद और लड़ाई-झगड़े में आता था, वह अब संतों की उपासना करने और उनसे कुछ सीखने में आने लगा।

मुनिश्री सुमेरमलजी (लाडनूं) का विक्रम संवत् 2030 का चातुर्मास सरदारशहर में हुआ। मुनिश्री सुमेरमलजी तेरापंथ इतिहास के अच्छे ज्ञाता हैं। तत्त्वज्ञान पर भी उनका अच्छा अधिकार है। उनका व्याख्यान कर्णप्रिय और ज्ञानवर्धक होता है। मुनिश्री का वह प्रवास मोहन के लिए वरदान सिद्ध हुआ। संतों के प्रति आकर्षण और सीखने की ललक के कारण उसका अधिकांश समय साधुओं के स्थान पर ही बीतने लगा।

मोहन बचपन से ही योजनाबद्ध तरीके से काम करता था। उसने समय-नियोजन का कभी विधिवत प्रशिक्षण तो नहीं लिया, किंतु समय नियोजन का यह गुण स्वतः ही आत्मगत बना हुआ था। जो व्यक्ति समय के मूल्य को पहचानता है, समय पर अपना काम करता है—वह सफलता हासिल कर लेता है। जो समय के महत्त्व को नहीं जानता, समय उसके हाथ से निकल जाता है और चाहे-अनचाहे उसे असफलता को स्वीकार करना पड़ता है। समय-नियोजन गुण के सहज धनी मोहन ने अपनी निश्चित दिनचर्या बना ली थी। उस दिनचर्या के अनुसार ही वह अपने सारे कार्य संपादित करता था। दिनचर्या का अतिक्रमण उसे बिल्कुल पसंद नहीं था। कदाचित किसी कारणवश दिनचर्या अस्त-व्यस्त हो जाती तो वह उसका प्रायश्चित्त करता। उसकी दिनचर्या सूर्योदय से लगभग डेढ़ घंटे पहले शुरू होती और प्रहर रात्रि बीतने के बाद संपन्न होती। उसके दिन के तेरह घंटे, या कुछ कम/अधिक सेवा, स्वाध्याय, अध्ययन, कंठस्थ आदि में बीत जाते। मोहन की इस प्रकार की चर्या को देखकर मुनिजन भी यदा-कदा दीक्षा लेने के लिए उसे प्रेरित करते रहते।

विक्रम संवत 2031, भाद्रव शुक्ला षष्ठी का दिन। मुनिश्री सुमेरमलजी ने कहा—'मोहन! आज तुम्हें एक निर्णय कर लेना चाहिए कि गृहस्थ में रहना है या साधु बनना है।' मोहन के जीवन का वह एक संधि-बिंदु था। पर, भावुकता में बहकर कोई निर्णय नहीं किया जा सकता, यह बात मोहन भलीभांति समझने लगा था। बहुत चिंतन-मनन के बाद ही मोहन ने अपने जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निर्णय किया—**मुझे साधु बनना है।**

दीक्षा एक प्रकार का नया जन्म होता है। मोहन ने भी मुनि मुदितकुमारजी के रूप में नया जन्म ले लिया। उसने अपने नए जीवन की यात्रा प्रारंभ की। कोई भी व्यक्ति जन्म के साथ ही महान नहीं बनता। उसे बहुत तपना होता है, खपना होता है। खदान से निकलते हुए सोने में चमक नहीं होती। वह जब अग्नि में तपता है, कई प्रक्रियाओं से गुजरता है—तब चमकदार बनता है। ठीक वैसे ही आदमी भी जब संस्कारों की अग्नि में तपता है, तो कुंदन की तरह चमक उठता है।

संस्कार एक अमूल्य निधि है। संस्कारों की संपदा से संपन्न जीवन सत्य होता है, सुंदर होता है और शिवत्व को प्राप्त करता है। मुनि मुदितकुमार भी संस्कारों की अग्नि में तपे और सबके आकर्षण के केंद्र बन गए, संघ के सिरमौर बन गए। मुनिश्री सुमेरमलजी व अन्य अनेक रत्नाधिक मुनियों ने उनके संस्कार-निर्माण में अपनी अहम भूमिका निभाई। स्वयं पूज्य गुरुदेव तुलसी भी संयम के संस्कारों से उनके चित्त को भावित करते रहते थे। एक बार मुनि मुदितकुमारजी आदि कुछ बाल-साधु बाहर से आए और पांव धोने लगे। गुरुदेव तुलसी अंदर बैठे-बैठे सबको देख रहे थे। तत्काल गुरुदेव ने मुनि मुदितकुमारजी को बुलाया और कड़े उपालंभ के साथ फरमाया—'मुदित! पैर नीचे से गंदे होते हैं। तुमने तो ऊपर धोए?' इतनी छोटी-सी बात के लिए ऐसे उपालंभ ने कुछ समय के लिए मन को भले व्यथित किया हो, किंतु अंततः तो उससे बोधपाठ ही मिलता है। इस प्रकार पैर धोने से पानी का अपव्यय होता है और विभूषा का भाव भी आ सकता है। मुनि मुदितकुमारजी ने बड़ी विनम्रता के साथ अपनी गलती स्वीकार की और भविष्य में ऐसा न करने का विश्वास दिलाया। हर क्षेत्र में जागरूक रहना उनकी जीवनशैली का एक अंग बन गया। इस जागरूकता का ही परिणाम है कि अध्यात्म-निष्ठा, संघनिष्ठा, संयमनिष्ठा, विनम्रता, सरलता और समर्पण के संस्कार उनके रोम-रोम में रम गए। तभी तो गुरुदेव तुलसी ने कहा था—'महाश्रमण बहुत भला है, बहुत विनीत है। इसे कुछ भी कह दो। यह इतना सरल है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। 'साधु हो तो ऐसा हो'—मैं यही कह सकता हूं।'

जैन वाङ्मय के भगवती सूत्र में जैन मुनि की एक जीवंत प्रतिमा प्रस्तुत की गई है। वहां मुनित्व के छब्बीस मानक दर्शाए गए हैं—**इरियासमिए भासासमिए एसणासमिए आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिए मण-समिए वइसमिए कायसमिए मणगुत्ते वइगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी चाई लज्जू धन्ने खंतिसमे जिइंदिए सोहिए अनियाणे अप्पुस्सुए अबहिल्लेसे सुसामण्णरए दंते इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ।**

अर्थात्—जो विवेकपूर्वक चलता है। विवेकपूर्वक बोलता है। विवेकपूर्वक आहार की एषणा करता है। विवेकपूर्वक वस्त्र-पात्र आदि को लेता और रखता है। विवेवकपूर्वक मल-मूत्र, श्लेष्म, नाक के मैल, शरीर के

गाढ़े मैल का परिष्ठापन करता है। मन की संगत प्रवृत्ति करता है। वचन की संगत प्रवृत्ति करता है। शरीर की संगत प्रवृत्ति करता है। मन का निरोध करता है। वचन का निरोध करता है। शरीर का निरोध करता है। अपने-आप को सुरक्षित रखता है। इंद्रियों को सुरक्षित रखता है। ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखता है। संग (आसक्ति) का त्याग करता है। अनाचरण करने में लज्जा करता है। कृतार्थता का अनुभव करता है। समर्थ होने पर भी क्षमा करता है। इंद्रिय-जयी है। अतिचार की विशुद्धि करता है। पौद्गलिक समृद्धि का संकल्प नहीं करता है। उत्सुकता से मुक्त रहता है। भावधारा को आत्मोन्मुखी रखता है। सुश्रामण्य में रत है। इंद्रिय और मन का निग्रह करता है। इस निर्ग्रंथ प्रवचन (जिन-शासन) को ही आगे रखकर चलता है। वस्तुतः युवाचार्य महाश्रमण की हर क्रिया में ऐसी ही संतता झलकती है।

मुनि के मुनित्व का इन मानकों से साक्षात्कार किया जा सकता है। युवाचार्यश्री महाश्रमण इन मानकों के पर्याय बन चुके हैं। जब वे चलते हैं तब शरीर-प्रमाण भूमि को देख, इंद्रिय-विषय और स्वाध्याय का वर्जन कर मौनपूर्वक चलते हैं। गमनयोग के समय वे और गति दो नहीं रहते। वे स्वयं गति बन जाते हैं। वे गति के प्रति दत्तचित्त और समर्पित हो जाते हैं, उसी में तन्मय बन जाते हैं। चलते समय—'मैं चल रहा हूं'—इस बात को वे क्षणमात्र के लिए भी विस्मृत नहीं करते। उनकी हर क्रिया में भावक्रिया परिलक्षित होती है। इसी प्रकार वे भाषा समिति में भी समित हैं। निरवद्य, परिमित, संयत और विचारपूर्वक बोलते हैं। अनावश्यक बोलने की तो बात ही नहीं, आवश्यक बात को भी सीमित शब्दों में कहते हैं। उनमें मितभाषिता, मधुरभाषिता, सत्यभाषिता और समीक्ष्यभाषिता स्वतःसिद्ध हैं। कह सकते हैं कि मात्र साधु-संस्था के ही नहीं, वे मानव-मात्र के लिए आदर्श रूप हैं। आर्षवाणी के मूर्तरूप युवाचार्यश्री महाश्रमण को देखकर सहसा दिल कह उठता है—'साधु हो तो ऐसा।' ❖

घर–परिवार और मित्र–परिजनों के यहां खुशी के अवसरों पर 'जैन भारती' उपहार के रूप में एक वर्ष, तीन वर्ष या दस वर्ष तक भिजवाकर आप आध्यात्मिक–नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान दे सकते हैं। जन्म–दिन का उपहार हो या कोई अन्य अवसर, 'जैन भारती' अनुपम उपहार के रूप में भेंट के लिए हमें लिखें। आपकी ओर से हम यह कार्य करेंगे।

जैन भारती एक संपूर्ण पत्रिका है।
वैचारिक उन्मेष और परिष्कृत रंजन के लिए
जैन भारती पढ़ें—सबको पढ़ाएं।

व्यवस्थापक
जैन भारती
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
तेरापंथ भवन, महावीर चौक
गंगाशहर, बीकानेर 334401

मैत्री और क्षमा पर्व
संवत्सरी

विशेष

क्षमा : आध्यात्मिक शक्ति

मुनि राजकुमार

धर्म के दस लक्षण माने गए हैं। शांति, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, संयम आदि। इनमें क्षमा का पहला स्थान है। क्षमा का अर्थ है—तितिक्षा, समभाव से सहना। कहा है—

सहनं सर्व दुःखानाम् अप्रतीकारपूर्वकम्।
वीतलोभ भय क्रोधं सा तितिक्षा निगद्यते।।

बिना प्रतिकार किए दुखों को समता के साथ सहना तितिक्षा कहलाता है। उस तितिक्षा में लोभ, क्रोध और भय का भाव मिश्रित नहीं होना चाहिए, क्योंकि क्रोध, लोभ और भय के कारण व्यक्ति बहुत-कुछ सह लेता है, किंतु वह तितिक्षा क्षमा नहीं कही जाएगी। गणधर गौतम भगवान महावीर से पूछते हैं—

कोह-विजयेणं भन्ते! जीवे किं जणयइ?
कोह-विजयेणं खन्तिं जणयइ

'भगवन! क्रोध की विजय से आत्मा को क्या लाभ प्राप्त होता है'—शिष्य गौतम ने पूछा। उत्तर मिला—'क्रोध विजय से आत्मा क्षमा को उत्पन्न करता है।' तात्पर्य यह हुआ कि क्रोध के विजय से ही क्षमा का आविर्भाव होता है। क्षमा आध्यात्मिक शक्ति का प्रतीक है। क्षमा वीरों का आभूषण है। कहा जाता है—'क्षमा वीरस्य भूषणम्'—वस्तुतः क्रोध कायरता का सूचक है। दुर्बल व्यक्ति प्रतिक्षण क्रुद्ध होता है। जो गंभीर और धीर पुरुष होते हैं, वे सहज, शांत एवं सहिष्णु होते हैं।

क्षमा से सर्वप्रथम हमें शारीरिक लाभ की प्राप्ति होती है। क्रोध से रक्त में ऊष्मा पैदा हो जाती है। इसीलिए मुंह और आंखों में लालिमा दिखाई पड़ने लगती है। हम कहा करते हैं कि अमुक व्यक्ति क्रोधारुण हो रहा है। अरुण शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा में रक्तता का द्योतक है। उस अरुणता से शरीर में तीव्र ऊष्मा पैदा हो जाती है। उससे रक्तचाप (ब्लड प्रेशर), हृदयाघात (हार्ट अटेक) आदि तत्काल उत्पन्न होने का भय रहता है।

क्षमा से सर्वप्रथम हमें शारीरिक लाभ की प्राप्ति होती है। क्रोध से रक्त में ऊष्मा पैदा हो जाती है। इसीलिए मुंह और आंखों में लालिमा दिखाई पड़ने लगती है। हम कहा करते हैं कि अमुक व्यक्ति क्रोधारुण हो रहा है। अरुण शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा में रक्तता का द्योतक है। उस अरुणता

से शरीर में तीव्र ऊष्मा पैदा हो जाती है। उससे रक्तचाप (ब्लड प्रेशर), हृदयाघात (हार्ट अटेक) आदि तत्काल उत्पन्न होने का भय रहता है।

क्रोध से रक्त में एक प्रकार का विष पैदा हो जाता है। आज के वैज्ञानिकों ने परीक्षणों द्वारा ऐसा तथ्य प्राप्त कर लिया है कि भीषण क्रोध की ज्वाला से संतप्त व्यक्ति के खून से अनेक चूहे मारे जा सकते हैं। सुना है—एक नवजात शिशु की माता किसी पड़ोसी बहिन के साथ भीषण संघर्ष में उतर आई। अनर्गल गालियां बकने लगी, क्रोध से प्रकंपित हो उठी। उसी स्थिति में वह अपने घर में आकर तत्काल अपने शिशु को स्तनपान कराने लगी। परिणाम यह हुआ कि उसके दूध में विष का संचार हो गया और वह भी इतना तीव्र रूप से हुआ कि दुग्धपान करता हुआ वह बच्चा मरणासन्न हो गया। डाक्टरों की जांच से यह तथ्य उभर कर आया कि तीव्र क्रोध के कारण इसका दूध विषाक्त हो गया। अतः क्रोध शारीरिक दृष्टि से भी बहुत हानिकारक है।

व्यावहारिक जीवन में भी क्रोध का परित्याग बहुत लाभप्रद है। जीवन एक संग्राम है। यहां सभी को कुछ-न-कुछ सहना ही पड़ता है। सर्वप्रथम माता-पिता का आदेश अनिच्छा से भी स्वीकार करना ही पड़ता है। इसी तरह पत्नी को पति का, पति को पत्नी का, मुनीम को सेठ का और सेठ को मुनीम का, नौकर को मालिक का और मालिक को नौकर का, शिष्य को गुरु का और गुरु को शिष्य का, बहू को सास का और सास को बहू का—कुछ-न-कुछ सहना ही पड़ता है। वहां क्षमा बहुत सहयोगिनी बनती है। यदि हम पारस्परिक व्यवहारों में असहिष्णु एवं उत्तेजित बन जाते हैं, तो संबंध तत्काल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। बहुत बड़ी हानियां हमें उठाने के लिए बाध्य होना पड़ता है। समय पर यदि हम कुछ गम खा लेते हैं, खामोश रह जाते हैं तो उसके बहुत सुंदर परिणाम आते हैं। हम सभी को अनेक बार ऐसा अनुभव भी होता है। शेखसादी साहिब से किसी ने पूछा कि अक्लमंदी की तारीफ क्या है? उन्होंने कहा—

कम खाना, कम बोलना अक्लमंदी है
बहुत खाना, बहुत बोलना बेवकूफी है

तात्पर्य यह हुआ कि गम खाने वाला ही कम बोलने का अभ्यासी बना रह सकता है। क्रोधी तो चाहे जैसा मुंह से अनर्गल बकने लगता है। अंग्रेजी में कहावत है—'एन एंग्रीमैन ओपंस हिज माउथ एंड शट्स हिज आईज'। क्रोधी व्यक्ति अपने मुंह को खोल देता है और आंखों को बंद कर लेता है। इसीलिए क्रोधांध शब्द का प्रयोग किया गया है। वह नहीं देख पाता कि मैं किसके सामने कहां, कैसा बोल रहा हूं। आवेग में जो शब्द निकल जाता है, उसे उसका होश ही नहीं रहता। फिर वह स्वयं पछताता है, जब उसे कटु परिणाम भुगतने पड़ते हैं।

एक क्रोधी व्यक्ति समूचे वातावरण को कलुषित बना देता है। आचार्य हेमचंद्र कहते हैं—'एक हिंसक पशु जैसे समूचे जंगल को संत्रस्त बना देता है, उसी भांति क्रोधी मनुष्य के संपर्क में आने वाले सभी संतापित बन जाते हैं।' क्रोध एक प्रकार की आग है। अग्नि के लिए कहा जाता है कि वह पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, नीचे और ऊपर अपना ताप फैलाती है। उसके समीप से गुजरने वाला व्यक्ति सहज गर्मी का अनुभव करता है। क्रोधी व्यक्ति का संपर्क भी उसी तरह सभी को कष्टप्रद प्रतीत होता है।

भगवान महावीर से पूछा गया कि क्रोध पर विजय कैसे प्राप्त करनी चाहिए? प्रभु ने कहा—'**उवसमेण हणे कोहं**'—उपशम भाव के द्वारा क्रोध का शमन करना चाहिए, उस पर काबू पाना चाहिए। उपशम का अर्थ होता है—शांति, उपशांति अर्थात् अध्यात्म। शांति के द्वारा क्रोध पर नियंत्रण किया जा सकता है। वस्तुतः क्रोध, काम आदि वेग माने गए हैं। ये वेग आदिम क्षणों में बड़े तीव्र होते हैं। इनके बहाव में व्यक्ति तुरंत बह जाता है। आवेग के क्षणों में वह अपने-आप को सम्हाल नहीं पाता। क्या हो रहा है—यह समझ नहीं पाता। बेभान अवस्था में जो-कुछ भी कर डालता है, फिर होश होने पर पछताता है, खिन्न होता है और अपनी बेसमझी पर ग्लानि का अनुभव करता है। यदि हम क्रोध के क्षणों में उपशांत रहें, यानी उसके द्वारा प्रभावित नहीं हों, तो उसका असर हमारे पर नहीं होगा। अभ्रक के पाट इसीलिए बहुत कीमती माने जाते हैं कि वे अग्नि के ताप से संतप्त नहीं होते। सुना जाता है कि एक-एक पाट की कीमत दस-दस हजार तक अदा की जाती है। वे हवाई-जहाज के किसी विशिष्ट भाग में काम आते हैं।

यह हमारे चिंतन की दुर्बलता है कि हम क्रोध का प्रतिकार क्रोध से ही करना चाहते हैं। गाली का जवाब गाली से देकर उस पर विजय पाना चाहते हैं, किंतु यह प्रणाली अंततः असफल सिद्ध होती है। क्योंकि सधर्मी वस्तुतः सधर्मी को दबा नहीं सकता। अग्नि को ईंधन कभी उपशांत नहीं कर सकता, क्योंकि वह तो उसका सहयोगी पदार्थ है। उत्तराध्ययन की टीका में एक बहुत सुंदर दृष्टांत प्रस्तुत किया गया है।

एक बार महाराज श्रीकृष्ण के दरबार में विदेशी सौदागरों ने बड़े कीमती घोड़े प्रस्तुत किए। श्रीकृष्ण ने परीक्षा के लिए चार घोड़ों का चयन किया। उन घोड़ों पर श्रीकृष्ण, ज्येष्ठ भ्राता श्री बलदेव, सात्यकि तथा दारुक आरूढ़ होकर अपराह्न में जंगल की ओर चल पड़े। वे घोड़े वक्र शिक्षित थे। ज्यों-ज्यों लगाम खींची, त्यों-त्यों तीव्र गति से भयंकर जंगल की ओर बढ़ते गए। पवन वेग से दौड़ते हुए घोड़ों पर वे किसी भी प्रकार से काबू न पा सके। सूर्यास्त हो चला। अंधकार ने अपना साम्राज्य जमाना शुरू कर दिया। चारों ही बड़े चिंतित हो गए। क्या किया जाए? घोड़े किसी भी प्रकार ठहरते नहीं थे। अंधकार में इतनी तीव्र गति से दौड़ना खतरे से खाली नहीं था। पर घोड़ों को कैसे ठहराया जाए, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। तभी दूर से उन्हें एक बड़ का वृक्ष दिखाई दिया। उसकी शाखाएं नीचे लंबायमान थीं। ऐसा निर्णय लिया गया कि घोड़ों की लगाम को सहसा छोड़कर बड़ की शाखा का एकदम अवलंबन कर लिया जाए, ताकि हम ऊपर के ऊपर रह जाएं व घोड़े जहां जाना चाहें, चले जाएं। उन्होंने वैसा ही किया। एक साथ घोड़ों की लगाम को छोड़ दिया व दोनों हाथों से बड़-शाखा को पकड़ लिया। आश्चर्य यह हुआ कि घोड़े एकदम ठहर गए। तब इनको खयाल आया कि ये तो वक्र शिक्षित अश्व हैं। हम व्यर्थ ही हैरान हुए। चारों ही खिन्न हो चुके थे। नगर से बहुत दूर भी आ चुके थे। अतः वापस नगर में पहुंचना कुछ कष्टसाध्य प्रतीत होने लगा। उन्होंने सोचा, आज जंगल की ही हवा खा ली जाए। रात्रिकालीन निवास आज यहीं करेंगे। ऐसा सोचकर जंगली पशुओं से बचने के लिए एक सुंदर व्यवस्था की। व्यवस्था इस प्रकार की गई कि पहले पहर में दारुक पहरेदार रहेगा और तीनों निश्चिंत होकर सोएंगे। दूसरे प्रहर में सात्यकि पहरा देंगे, तीसरे प्रहर में बलभद्र भाई का क्रम लगा और चौथे प्रहर का पहरा श्रीकृष्ण महाराज ने संभाला। ऐसा निर्णय लेकर किन्हीं सुरम्य पर्वतीय शिलाओं पर सानंद लेट गए। थके-मांदे होने के कारण तुरत निद्रादेवी की गोद में चले गए। सिर्फ दारुक हाथ में तलवार लेकर पहरा देने लगा। अंधकार सघन हो चला था। इतने में एक भयंकर दैत्य होंठों को डसता हुआ, आंखों से आग बरसाता हुआ, भयंकर आकृति को धारण करता हुआ वहां आया और दारुक को पुकारने लगा। दारुक! तू मुझे जानता है, मैं कौन हूं? मैं क्रोध नाम का दैत्य हूं। घट-घट में मेरा निवास है। मेरे पर कोई विजय नहीं पा सकता। बड़े-बड़े वीर मेरे आगे हार मान जाते हैं। तू श्रीकृष्ण महाराज का शूरवीर सुभट है, आज तेरे बल की परीक्षा है। मेरे सम्मुख युद्ध करने के लिए तत्पर हो जा, अन्यथा अपनी हार स्वीकार कर ले। दारुक इस दैत्य को देखकर चौंक पड़ा। अरे यह जंगल में संघर्ष कहां से छिड़ गया। लेकिन, मैं हार मानने वाला नहीं। ऐसा सोचकर दारुक ने कहा—तू क्या मुझे अपनी शक्ति का वर्णन सुना रहा है, मैं तेरे सामने कभी हार मानने वाला नहीं, आ जा मेरे सामने। बस फिर क्या था, दोनों में भयंकर संघर्ष छिड़ गया। ज्यों-ज्यों दारुक क्रोधारुण होकर दैत्य के साथ लड़ने लगा त्यों-त्यों दारुक की शक्ति क्षीण होती गई व दैत्य की शक्ति बढ़ने लगी। दारुक हैरान था कि यह हो क्या रहा है, पर कुछ समझ नहीं पाया। आखिर मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर गया।

रात्रि के दूसरे प्रहर में सात्यकि स्वतः जाग पड़े। देखा तो दारुक छिन्न-भिन्न अवस्था में भूमि पर गिरा हुआ था। उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया। सोचा—थका हुआ था, सो गया होगा। कुछ समय के बाद तत्काल वही दैत्य सात्यकि के सामने आया। उसी भांति अपने गौरव की गाथा गाने लगा। सात्यकि के साथ में युद्ध प्रारंभ हुआ। वे भी ज्यों-ज्यों क्रुद्ध होते गए, त्यों-त्यों निर्बल होते चले गए। परिणाम यही हुआ कि बेभान होकर भूमि पर गिर पड़े। तीसरे प्रहर में ज्येष्ठ भ्राता बलभद्रजी की भी वही स्थिति हुई। आखिर चौथे प्रहर में श्रीकृष्ण महाराज स्वतः उठकर चौकी लगाने लगे। उसी भांति दैत्य आया और अपनी शेखी बघारने लगा।

शेष पृष्ठ 57 पर

बालकथा

गड़रिया बना महामंत्री

चित्रा मुदगल

उज्जयिनी के न्यायप्रिय राजा समरसिंह का महामंत्री चतुर्भुज बुद्धिसंपन्न व्यक्ति नहीं था। जब भी राजकाज में राजा को सलाह की जरूरत होती, चतुर्भुज आधारहीन तर्क दिया करता। राजा अपने महामंत्री चतुर्भुज से तंग आ गया था। चतुर्भुज बुजुर्ग था, इसलिए राजा उसे निकालना भी नहीं चाहता था। लेकिन, यह अवश्य चाहता था कि राजकाज में सहयोग देने के लिए उसके साथ कोई बुद्धिमान और कार्यकुशल व्यक्ति जरूर हो, ताकि कठिन समय में वह उससे विचार-विमर्श कर सके।

'इस समस्या में मेरी कौन सहायता कर सकता है?'—राजा कई दिनों तक सोचता रहा। कभी उसके मन में विचार आता, ऐसे किसी व्यक्ति को ढूंढ़ निकालने के लिए वह अपने किसी विश्वासपात्र मित्र से कहे। कभी सोचता कि एक

गांव वालों ने प्रश्न सुना तो मन ही मन खीझ उठे। समझ गए कि राजा की मंशा नेक नहीं है। वह उनसे दंड की दस हजार अशर्फियां वसूलने की फिराक में है। यह तो ऐसा प्रश्न है कि कोई भी हल नहीं कर सकता। बकरी का क्या है? जहां हरियाली देखी वहीं मुंह मारने लगेगी। उसे रोज नाप-जोख कर खिलाना-पिलाना तो संभव नहीं है। वजन तो बढ़ेगा ही बढ़ेगा।

लेकिन प्रश्न सुनकर गड़रिया बिल्कुल नहीं घबराया। उसने बकरी को गांव से बाहर ले जाकर एक पेड़ के तने से बांध दिया।

बैठक बुलाए। सभासदों से कहे। वे उसके लिए कोई बुद्धिमान सहायक खोज दें। लेकिन, वह किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाया। हार कर उसने निश्चय किया; इस समस्या के समाधान के लिए वह राजगुरु महर्षि वेदकांत के पास जाएगा। जैसा वे कहेंगे, वैसा ही करेगा।

राजा ने ऐसा ही किया। एक दिन आश्रम में पहुंच कर राजा ने राजगुरु के चरणस्पर्श किए और अपने आने का उद्देश्य बताया—'भगवन, इन दिनों मैं बड़ी उलझन में हूं।'

राजगुरु ने शांत भाव से राजा को देखा। बोले— 'किसी विपत्ति में पड़ गए हो वत्स?'

राजा ने संकोच से भर कर कहा—'ऐसा ही समझिए भगवन! आप तो चतुर्भुज के विषय में जानते ही हैं। मैं उससे बहुत निराश

हूं। इधर राजकाज की समस्याएं दिन-पर-दिन जटिल होती जा रही हैं। विचार-विमर्श के लिए मुझे एक चतुर सहायक की बड़ी आवश्यकता है। आप मुझे कोई उपयुक्त पात्र सुझाएं।'

राजा की बात सुनकर राजगुरु गंभीर हो उठे। कुछ देर वे विचारमग्न बैठे रहे। फिर अपना मौन खोला—'राजन! तुम्हारी चिंता उचित है। किंतु, यह कार्य जल्दबाजी का नहीं है। काफी जांच-परख कर उपयुक्त पात्र की खोज करनी होगी।'

राजा ने अधीर होकर कहा—'बताइए, मैं क्या करूं?'

राजगुरु ने अपने एक शिष्य को कागज-कलम ले आने के लिए कहा। फिर राजा से बोले—'राजन! मैं तुम्हें सात प्रश्न लिखवाता हूं। प्रश्न बहुत कठिन हैं, उनका उत्तर कोई बुद्धिमान ही दे सकता है। तुम इन प्रश्नों को अपने राज्य के प्रत्येक गांव और नगर में भिजवा दो। घोषणा कर दो कि उन्हें प्रश्नों के उत्तर सात दिनों के अंदर देने हैं। अगर वे सात दिनों के अंदर सही उत्तर देने में असमर्थ रहे तो उन्हें दंड का भागी बनना होगा। जुर्माने में दस हजार अशर्फियां भरनी पड़ेंगी।'

'परिणाम क्या होगा भगवन?'—राजा ने हिचकिचाते हुए पूछा।

राजा की अधीरता पर राजगुरु मुस्कराए और बोले—'वत्स, मैं तुम्हें विस्तार से समझाता हूं। गांव या नगरवासी पूरी कोशिश करेंगे कि प्रश्नों के सही उत्तर देकर वे दंड से बच जाएं। लेकिन, वे दंड से तभी बच सकते हैं जब उनके गांव या नगर का कोई बुद्धिमान व्यक्ति अपनी तीक्ष्ण प्रतिभा से उन प्रश्नों को हल कर देगा। अगर किसी ने तुम्हारे प्रश्नों के सही उत्तर दे दिए तो समझ लो तुम्हें उपयुक्त सहायक मिल गया।'

फिर राजा की पीठ थपथपाते हुए राजगुरु ने उसे आश्वस्त किया—'अब तुम निश्चिंत होकर राजमहल जाओ। यह मानकर चलो कि जो व्यक्ति अपनी बुद्धि और चतुराई के बलबूते पर अपने गांव-नगर को दंड का भागी होने से बचा सकता है, वह राजकाज की कठिन समस्याओं को सुलझाने में तुम्हारी पूरी मदद भी कर सकता है....'

राजगुरु की तरकीब राजा को बहुत पसंद आई। वह महर्षि को प्रणाम कर प्रसन्न मन आश्रम से लौट पड़ा।

राजमहल पहुंचते ही राजा ने तत्काल अपने प्रधान सेनापति को बुला, उन्हें आदेश दिया कि वे गांव-गांव और नगर-नगर में यह प्रश्नपत्र पहुंचा दें और घोषणा कर दें कि जो इन प्रश्नों के सही हल नहीं भेज पाएंगे, उन्हें जुर्माने में दस हजार अशर्फियां भरनी पड़ेंगी।

एक-एक दिन बीतने लगा। राजा बेसब्री से प्रश्नों के सही उत्तर पाने की प्रतीक्षा करता रहा। लेकिन, सही उत्तर प्राप्त होने के बजाय उसके खजाने में जुर्माने की अशर्फियों का ढेर लगने लगा।

राजा अनमना हो उठा। उसे लगने लगा कि शायद तरकीब कामयाब न हो पाए।

देखते-देखते अवधि का अंतिम दिन भी आ पहुंचा। राजा सोच में पड़ गया कि क्या उसके राज्य में एक भी प्रखर बुद्धिमान व्यक्ति नहीं है?

उसे राजगुरु महर्षि वेदकांत पर भी क्षोभ होने लगा। आखिर उन्होंने इतने कठिन प्रश्न पूछे ही क्यों?

ऐसा भी नहीं था कि किसी ने प्रश्नपत्र हल करने की कोशिश नहीं की। मगर वे बमुश्किल एकाध प्रश्न का उत्तर ही दे पाए।

संध्या हो आई। उदास राजा अपने बाग में टहलते हुए सोचने लगा। इसमें किसी का क्या दोष, उसकी भाग्यदेवी ही उससे रूठी हुई है। वरना क्या बुद्धिमानों का देश में अकाल पड़ जाता? अब तो जो-कुछ होना था वह हो चुका। वह कल सुबह ही महामंत्री को बुलाकर आदेश दे देगा कि गांव और नगरवासियों को उनके जुर्माने की राशि तुरंत लौटा दी जाए। मन चूंकि उखड़ा हुआ है, अतः कुछ दिनों के लिए वह तराई के जंगलों में आखेट के लिए निकल जाएगा।

राजा मन ही मन यह निर्णय ले ही रहा था कि अचानक एक प्रहरी दौड़ा-दौड़ा आया और अभिवादन कर बोला—'महाराज की जय हो! दास सेवा में कुछ

निवेदन करना चाहता है।'

'बोलो प्रहरी, क्या बात है?'

प्रहरी बोला—'महाराज! भद्रपुर गांव के मुखिया जसदेवसिंह एक युवक गड़रिए के साथ आपसे भेंट करने आए हैं, उनका दावा है कि वह गड़रिया महाराज के सारे प्रश्नों का उत्तर दे सकता है। आज्ञा हो तो उन्हें ले आऊं?'

'अवश्य।'—राजा ने कहा।

कुछ ही पलों में प्रहरी भद्रपुर गांव के मुखिया और गड़रिए के साथ राजा के सम्मुख आकर खड़ा हो गया।

दीन गड़रिए को देखकर राजा अविश्वास से भर उठा। उसने सोचा यह ढोर-डांगर चराने वाला मामूली-सा छोकरा उन प्रश्नों के उत्तर भला क्या दे सकेगा, जिन्हें अब तक राज्य का कोई भी व्यक्ति हल नहीं कर पाया।

फिर भी बात तो करनी ही थी। राजा ने उन्हें बेमन से बैठने के लिए कहा।

जलपान आदि कराकर राजा ने गड़रिए से पहला प्रश्न पूछा—'बकरी के पेट में मल गोल-गोल कैसे पैदा हो जाता है?'

'वायु से।'—गड़रिए ने निर्भीक होकर उत्तर दिया।

राजा सही उत्तर सुनकर अचंभे में पड़ गया। किंतु, दूसरे ही पल उसने अनुमान लगाया—हो सकता है, इस प्रश्न को हल करने में किसी ने उसकी सहायता की हो। चलो, अगला प्रश्न करते ही पोल खुल जाएगी कि वह कितने पानी में है।

राजा ने दूसरा प्रश्न किया।

—'पीपल के पत्ते का डंठल बड़ा होता है या पत्ते का ऊपरी भाग?'

—'दोनों बराबर होते हैं।'

राजा के विस्मय का ठिकाना न रहा। उसने तुरंत तीसरा प्रश्न किया—'गिलहरी के शरीर में कितनी काली रेखाएं होती हैं, कितनी सफेद? उसका शरीर लंबा होता है या उसकी पूंछ?'

गड़रिया तपाक से बोला—'महाराज, गिलहरी के शरीर पर जितनी काली रेखाएं होती हैं, उतनी ही सफेद होती हैं। उसका शरीर और पूंछ, दोनों बराबर होते हैं।'

राजा ने चौथा प्रश्न किया—'राजा के कितने पिता होते हैं?'

—'महाराज, पांच।'

—'कौन-कौन से?'

—'राजा, कुबेर, चांडाल, चोर और बिच्छू।'

—'सो कैसे?'

—'सुनिए। राजा का पहला पिता है—राजा। क्योंकि वह राजा का पुत्र होता है। दान में वह कुबेर के समान होता है, अतः उसका दूसरा पिता है—कुबेर। क्रूरता में वह चांडाल के समान होता है, इसलिए वह चांडाल का पुत्र है। सब-कुछ हरण करने में वह चोर के समान होता है, अतएव वह चोर का पुत्र है। सोते हुए को वह छड़ी की नोक से उठा सकता है, इस तरह वह बिच्छू का पुत्र भी है।'—गड़रिए ने अपना उत्तर स्पष्ट किया।

राजा गड़रिए की बुद्धिमत्ता पर मुग्ध हो उठा। पर, उसने अपने मन के भाव उस पर प्रकट न होने दिए। वह समझ गया कि शेष तीनों प्रश्नों के उत्तर भी गड़रिया आसानी से दे सकता है। अब उन प्रश्नों को पूछना समय व्यर्थ गंवाना होगा।

राजा अभी ऊहापोह में ही था कि अचानक उसके दिमाग में एक विचार कौंधा। निजी सहायक के पद पर गड़रिए को रखने से पहले क्या ही अच्छा हो कि वह उसकी कार्य-कुशलता और सूझ-बूझ को भी आजमा ले।

राजा ने गंभीर मुद्रा बनाकर मुखिया से कहा—'गड़रिए को लेकर आप गांव लौट जाइए। लगता है कि इसकी किसी ने मदद की है। अतः बाकी के तीन प्रश्न मैं गांव भिजवाऊंगा। वे प्रश्न और कठिन होंगे। अगर यह उन प्रश्नों के सही उत्तर नहीं दे पाया तो आप लोगों को जुर्माने की रकम भरनी पड़ेगी।'

दूसरे दिन राजा ने गांव वालों के पास पांचवां प्रश्न भिजवाया—'गांव के बाहर जो शिला पड़ी हुई है, उसका मंडप बनवा दो।'

प्रश्न सुन कर गांव वाले चकरा गए। भला शिला का मंडप कैसे बन सकता है?

गड़रिए ने प्रश्न सुना तो हंस दिया। बोला—'आप लोग नाहक परेशान हो रहे हैं। इसमें क्या मुश्किल है?'

उसने उन लोगों से कहा कि वे शिला के चारों ओर की भूमि को गहरा खुदवा दें। फिर चारों कोनों में चार खंभे लगवा दें। ताकि शिला उन पर टिकी रहे। बस मंडप तैयार।

लोगों ने वैसा ही किया। राजा ने मंडप देखा तो दांतों तले उंगली दबा ली।

कुछ दिनों बाद राजा ने गांव वालों के पास एक बकरी भेजी और कहलवाया—'महीने भर बाद भी यह बकरी वजन में उतनी ही रहे।'

गांव वालों ने प्रश्न सुना तो मन ही मन खीझ उठे। समझ गए कि राजा की मंशा नेक नहीं है। वह उनसे दंड की दस हजार अशर्फियां वसूलने की फिराक में है। यह तो ऐसा प्रश्न है कि कोई भी हल नहीं कर सकता। बकरी का क्या है? जहां हरियाली देखी वहीं मुंह मारने लगेगी। उसे रोज नाप-जोख कर खिलाना-पिलाना तो संभव नहीं है। वजन तो बढ़ेगा ही बढ़ेगा।

लेकिन प्रश्न सुनकर गड़रिया बिल्कुल नहीं घबराया। उसने बकरी को गांव से बाहर ले जाकर एक पेड़ के तने से बांध दिया। वहां रोज रात में एक भेड़िया आता था। गड़रिया भेड़िए से उसकी निगरानी रखने लगा। साथ ही बकरी को खूब खिलाता-पिलाता रहा। छक कर भोजन मिलने से बकरी का वजन घटा नहीं और भेड़िए के भय से बढ़ा नहीं।

अब बारी आई सातवें प्रश्न की। राजा ने गांव वालों के पास एक मुर्गा भेजा और कहा—'बिना दूसरे मुर्गे से लड़वाए इसे लड़ाकू बना दो।'

गड़रिए ने मुर्गे के सामने एक बड़ा-सा दर्पण रख दिया। मुर्गा दर्पण में अपना प्रतिबिंब देखता और दूसरे मुर्गे के भ्रम में उससे खूब युद्ध करता। कुछ ही दिनों में वह खूब लड़ाकू बन गया तो गड़रिए ने उसे राजा के पास भिजवा दिया।

गड़रिए के बुद्धिकौशल से राजा प्रसन्न हो उठा। वह तुरंत भद्रपुर गांव गया और गड़रिए को अपना निजी सहायक बनाकर राजमहल ले आया।

दूसरे दिन ही राजा ने गांव तथा नगरवासियों से दंड में वसूली गई रकम वापस करवा दी। ❖

क्षमा : आध्यात्मिक शक्ति पृष्ठ 53 का शेष

महाराज आपने अनेक संग्राम किए हैं। सभी जगह जय प्राप्त की है, किंतु आज यदि मुझे जीत लें तो मैं आपको बलशाली मानूंगा। पहले जरा यह देख लें कि आपके तीनों साथियों की क्या हालत हुई है। मैं क्रोध नाम का दानव हूं। मेरे पर संसार में कोई भी विजय नहीं पा सकता। आप भी अपनी शक्ति का परीक्षण कर लें।

श्रीकृष्ण महाराज बड़े अंतर्द्रष्टा थे। तुरंत इस गूढ़ रहस्य को समझ गए। सोचने लगे कि यह क्रोध नाम का दैत्य है। यदि मेरे हृदय में क्रोध का वेग बढ़ेगा तो क्या इसकी शक्ति भी द्विगुणित नहीं हो जाएगी? नहीं! क्रोध का प्रतिकार क्रोध नहीं है। अग्नि को तो पानी के द्वारा ही शांत किया जाता है, न कि केरोसिन के द्वारा। प्रतिकूल शक्ति ही किसी वस्तु पर काबू पा सकती है, न कि अनुकूल। अनुकूल शक्ति तो प्रत्युत उसमें शक्ति का ही परिवर्द्धन करती है। ऐसा सोचकर आप हंसने लगे। बिना क्रोध के आवेश में आए कहने लगे—क्रोध दैत्य! तेरी क्या बात है! तू बड़ा शक्तिशाली है। घर में फूट डालने वाला तू ही है। पिता और पुत्र का विद्रोह उत्पन्न करने की क्षमता तुझमें ही है। सास व बहू के झगड़े तेरे ही कारण होते हैं। तू बड़ा वीर है। तुझे कौन जीत सकता है! श्रीकृष्ण महाराज की क्षमा-शांति इतनी तीव्र हो चली कि क्रोध-दानव मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़ा। उसे सहयोगी निमित्तों का योग नहीं मिला। अतः निर्बल होता हुआ बेभान हो गया।

तीनों साथियों को आपने सचेत किया और उनके हारने का असली मर्म समझाया। वे भी वास्तविकता को समझ कर बहुत प्रसन्न हुए और 'क्रोध से क्रोध-दानव को दबाया नहीं जा सकता'—ऐसा नया बोधपाठ सीख गए। ❖

चुनौतियों में अप्रकंप व्यक्तित्व

पृष्ठ 28 का शेष

आगम अध्ययन में युवाचार्यश्री की प्रगाढ़ आस्था है। प्रतिदिन साधुओं को आगम की वाचना प्रदान करते हैं। बत्तीस आगमों का स्वाध्याय करना युवाचार्यश्री का संकल्प है। इस क्रम में अनेक आगमों का पारायण हो चुका है और वर्तमान में भी यह उपक्रम चल रहा है। सूर्यास्त से एक-डेढ़ घंटे पूर्व सायंकालीन आहार ग्रहण करते हैं। तदनंतर समणीवृंद को संस्कृत ग्रंथ का अध्यापन कराते हैं। उस समय कई बार लोगों से वार्तालाप भी करते हैं। सूर्यास्त के बाद सायंकालीन प्रतिक्रमण, अर्हत्-वंदना और स्वाध्याय करते हैं। कभी-कभी बाल-साधुओं को पढ़ाते हैं। रात्रि में भी प्रवचन करते हैं। यदा-कदा आचार्यश्री के साथ अंतरंग चर्चा का समय भी प्रायः यही रहता है। लगभग दस बजे योग-निद्रा में प्रवेश करते हैं।

युवाचार्यश्री महाश्रमण के पौरुष की यह कहानी है। यात्रा में भी यही दिनचर्या व्यवस्थित रहती है। कठिन से कठिन कार्य के बाद भी चेहरे पर कभी थकान नहीं लगती। अहिंसा-यात्रा में कभी-कभी एक मंजिल से अगली मंजिल पहुंचने से पहले मार्ग में तीन-चार बार छोटे-छोटे वक्तव्य हो जाते हैं। कभी गोचरी के लिए अनेक घरों का स्पर्श भी करते हैं। अनेक कार्यों का संपादन करते हुए भी आप हर पल प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

लगता है युवाचार्यश्री महाश्रमण का पुरुषार्थ किसी एक दिशा में नहीं, अनेक दिशाओं में गति कर रहा है। कोई व्यक्ति एक दिशा का अनुगमन कर सकता है, किंतु अनेक दिशाओं में पुरुषार्थ की धारा में बहने वाले व्यक्ति विरल ही होते हैं। पराक्रमशील और सफल व्यक्तित्व का रहस्य है—सतत अप्रमाद, अहर्निश शुभ अध्यवसाय, प्रबल संकल्प बल और अमित आत्मविश्वास। इन सब गुणों से संपन्न व्यक्तित्व विलक्षण और अलौकिक बनता है। तभी चेतना के ऊर्ध्वारोहण का पथ प्रशस्त हो सकता है। ❖

किशोर मन

पृष्ठ 33 का शेष

यह अवस्था भी कितनी हल्की-फुल्की होती है। अभी गुस्से में लिहाफ लपेटे पड़ी थी, अब ठुमकती हुई कुलांचे ले रही है। खाना खाते समय मधु बावेला मचा देती है। मेरा तो यह हाल रहता है कि खाना देखने के पहले पेट भरा, और वह है कि खाना सामने हो तब भी 'भूख-भूख' का शोर मचा कर घर सिर उठा लेगी। 'भूख लगे तो खा ले, मुझे क्यों साथ घसीटती है?' प्लेट लेकर सामने बैठ जाएगी—'दीदी, एक गस्सा तुम, एक गस्सा मैं।'

मैं खीझ कर मना करूंगी, तो होंठ निकाल कर कहेगी—'ठीक है। हम भूखे सो जाएंगे आज। नहीं खिलाना चाहतीं, मत खिलाओ।'

उस दिन पुरखा-सी सामने बैठ कर डपटने लगी—'दीदी, पालक खाओ।'

मैं झुंझलाई—'तंग मत कर मधु। अच्छा नहीं लगता है।'

मधु बोली—'छिः, खाने की चीज को ऐसे नहीं कहते। इसमें तो प्रोटीन होता है। सब्जियां खाने से चेहरे पर रौनक आती है, तबीयत ताजी....'

मैं कुछ विनोद से उसका पुरखापन देख रही थी। कहा—'मधु, चाचीजी को मैं चिट्ठी डाल देती हूं कि तेरा जल्दी-जल्दी ब्याह कर दें। पक्की गृहिणी बनेगी।'

बगावत के सारे रंग मधु के कपोलों पर एक साथ झलक गए—'आप भी उन-जैसी हैं दीदी। किसी में कोई फर्क नहीं। अम्मा तो पूरे दिन ब्याह की बात ही करती हैं। कहती हैं कि मैट्रिक के बाद मधु की शादी कर देंगे। ढेरों कपड़े, बरतन जोड़ कर रखे हुए हैं।'

मैंने चुटकी ली—'बड़ी 'अपटूडेट इन्फार्मेशन' है!'

मधु ने सिर झटक कर कहा—'न रखी होती तो अब तक किसी 'किचिन' में मिलती। दीदी कुछ भी हो, मैं तो अभी जिंदगी जीना चाहती हूं। गृहस्थी का गुणा-भाग मैं नहीं कर सकती, इसलिए स्कूल के गुणा-भाग जानबूझ कर गलत करती हूं। जिस दिन स्कूल से निकल लूंगी, किसी घेरे में पहुंचा दी जाऊंगी। मेरी भी जिद है। तुम चाहो तो यह भेद अम्मा को बता कर मुझे उमर-कैद दिला सकती हो। बताओगी तो नहीं न!' ❖

तरुण सेठिया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1
के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

With best compliments from :

WHILE IN BANGALORE STAY AT

Enjoy Star Facility At Moderate Tariff

HOTEL MAHAVEER

Ideally located in the Heart of the City

Proximate to Shopping & Entertainment Centers,
Well Furnished Rooms, with Attached Bathroom, Telephone, T.V. etc.,
Pure Vegetarian, A/c Rooms Available, Decorated Lobby,
Personalized Room Service, Credit Cards Accepted, Doctor on Call.

 # 8/1 & 9, Tank Bund Road, (Near City Railway Station)
Bangalore 560053 (INDIA)
Tel : (080) 2287 3670, 3271 0384, Fax : 2287 3670.

आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा (गांधीनगर)
पि. ३८२ ००९
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

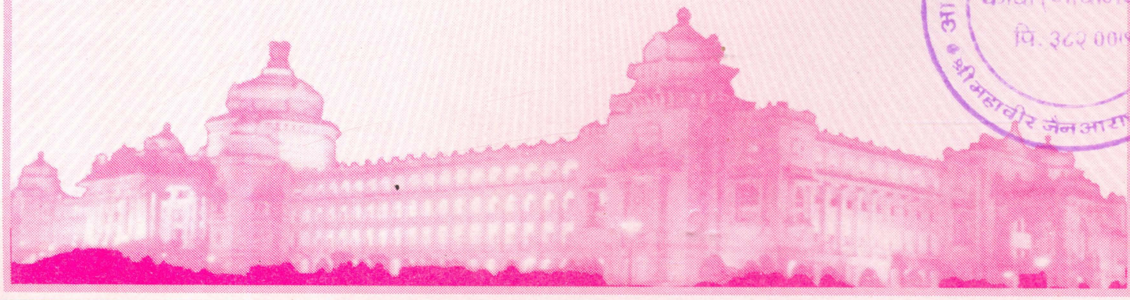

प्रेषण दिनांक 5 सितंबर, 07

Licensed to Post without Pre-Payment Under Licence
No. Tech.(WR)47-2/05-06/11 Valid till 31-12-2008

जैन भारती, सितंबर, 2007

भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/06-08

With best compliments from :

THE KALYANI TEA CO. LTD.

**MAKERS OF FINEST QUALITY OF
GREEN / ORTHODOX / CTC
TEAS**

Head Office :

16, Bonfield Lane, KOLKATA 700001

Phone & Fax : (033) 2242-6141

Garden :

Kenduguri Tea Estate

P.O. Rajgarh, Dist. Dibrugarh, Assam

Phone : (03754) 276646 Fax : (03754) 276627

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।